पराया
रांगेय राघव

दो शब्द

प्रस्तुत उपन्यास में मैंने समाज में प्रचलित व्यवस्था को ज्यों का त्यों दिखाया है। युवकों में जिसे 'जीवन में उन्नति' कहने का भ्रम हो गया है, उसका इस पुस्तक में प्रदर्शन किया है। कथानक इसीलिए क्षिप्र है। अपने अन्य उपन्यासों की भांति इस कथानक को भी मैंने आग्रह से चुना है। जीवन की विषमता को रटना मेरा ध्येय नहीं है, उसे मिटाना मेरा उद्देश्य है।

—रांगेय राघव

पराया

सांझ के झुटपुटे में जब सड़क अधमिची नजरों से इधर-उधर एक चहल-पहल का सुन्दर सपना देखती है, तब बिजली के खंभों पर बल्ब एक उदासी से इधर-उधर नहीं देखते, वे अपने भीतर एक चमक की आशा में टंगे रहते हैं। उस समय आकाश कभी लाल, कभी नारंगी हो जाता है और समुद्र पर उसकी छाया गिरने लगती है। समुद्र को तीन तरफ से धरती घेर लेती है, और चौथी ओर वह प्रेमी के विशाल हृदय की भांति फैलता चला जाता है। दिगंतव्यापिनी शून्य लहर उसका स्पन्दन है, और अनन्त व्यथा की हिलोरों में उसका कांपता जीवन एक अतृप्ति का अजस्र प्रवाह-सा धीमे-धीमे गूंजा करता है। तट की हरियाली उतरती सांझ के पांव चूमती धीरे-धीरे निस्तब्ध हो जाती है, उस पर एक भीगापन छा जाता है, हरियाली शनैः-शनैः कालिमा में परिवर्तित होती चली जाती है और बालू पर कभी सुनहली प्रभा प्रतिध्वनित होती है, कभी समुद्र के भीतर चले गए कछार पर लोटती है और उसके बाद आकाश स्याह पड़ जाता है, तब समुद्र एक भूखे भेड़िये की तरह हांफता हुआ अपनी विवशता पर गुर्राता हुआ ही भागने लगता है।

निरन्तर चलनेवाली वायु लहरों पर खीझकर पहले दो-चार बार गधे की तरह लोटती है, जैसे वह धूल में लोटकर अपनी थकान मिटा लेना चाहती है और फिर वह खामोश होकर अपने दोनों कान खड़े करके रात-भर चुप हो जाती है, जैसे कोई महान दार्शनिक कुछ सोच रहा हो।

चिन्तन की व्याप्ति में जीवन का न अथ है, न इति। सतत कर्म ही जिस परम्परा की चेतना का प्रतीक है, वह अपने-आप में सीमित नहीं है।

अवकाश एक छल नहीं, वास्तविकता है। न हिंस्र पशु की-सी आतुरता, न भरपेट खाए सिंह की निद्रा ही मनुष्य की यातना को सांत्वना देती है। अपने भीतर की अदम्य तृष्णा ही उसे नई शक्ति देती है।

दूर बिजली के तार दिखाई देते हैं। उन तारों पर कभी-कभी एक चमक-सी व्याप्त होती है। कौए उड़कर सुबह और शाम की वेला में अपना गीत सुनाते हैं, जैसे दिन और रात की संधियों में मनुष्य की यातना के प्रतीक बनकर ये काले-काले रूप आकाश में उड़कर लय हो जाते हैं। लय नहीं होते, वे उन बीहड़ सुनसान मरघटों के पीपलों पर जाकर थोड़ी देर कांव-कांव करके उड़-उड़कर, घूम-घूमकर बैठ जाते हैं, जहां सुखों का निवृत्ति होती है। और इस प्रकार आदर्श का खोखलापन अपनी ही व्यर्थता पर अट्टहास करके बार-बार हंसने लगता है। वे काली छायाएं विराट अट्टालिकाओं पर उड़ती हैं। और वे विराट अट्टालिकाएं जीने की मजबूरी में खड़ी हैं। आकाश के उड़ते हुए पक्षी से जब आंखों का कैमरा नीचे आता है, वहां परेशानी शुरू होती है। यह ज़िन्दगी की वह असलियत है जिसे हालांकि बदला जा सकता है, पर उसकी मौजूदा हालत को झुठाया नहीं जा सकता। एक ज़िन्दगी एक बिन्दु है। गणितज्ञ कहते हैं कि बिन्दु की न लम्बाई होती है, न चौड़ाई, न ऊंचाई, न मोटापन। परन्तु यह ज़िन्दगी पर लागू नहीं होता। ज़िन्दगी के हर नये पहलू में एक सचाई है, हर पुराने पहलू में एक नया तजुर्बा है और वह इतनी नाकाम दिखाई देने पर भी इतनी ठोस है कि उससे इन्कार ही नहीं किया जा सकता। वह चौराहे की तरह है। उससे चार ही नहीं, अनगिनत सड़कें निकल जाती हैं। वह हर सड़क एक वर्ग है, वर्ग के बीज के रूप में मनुष्य है, और इसी चौराहे पर मनुष्य के हज़ारों बरस के अनुभव ने एक सिपाही खड़ा किया है, जो पथ के अपने नियम बनाता है, वही समाज का संचालक है। हज़ारों-लाखों की भीड़ का वह मालिक अपने-आप में इसीलिए पूर्ण है कि उसको सर्वसम्मति से एक समय स्वीकार किया जाता है। जब उससे हल नहीं निकलता तब उसे हटा दिया जाता है।

पहले यहां जंगल था। उस जंगल को कई आदमियों ने साफ किया। वहां एक पगडंडी बनी, फिर समय ने उस इक्के-दुक्के आदमी के कदमों के

रौंदे रास्ते को चौड़ा किया। कच्चा पथ बना। फिर इन्सान की तरकीब बढ़ी। उसने कच्चे रास्ते की छाती पर पत्थरों के टुकड़ों को लोहे से ठोंक दिया और तब उसने महसूस किया कि जो पांव पहले मुलायम धूल में जचकते थे, अब उन्हें तलुओं में एक चुनौती-सी मिलने लगी है। वह फिर भी सन्तुष्ट नहीं हुआ। उसने फिर सोचा। वह तारकोल को गर्म करने लगा। उसने वजरी कूटकर धरती पर बिछा दी। वह वक्त भी चला गया। तब उसने पत्थर को फूंककर भस्म कर दिया। वह सीमेंट बना। पत्थर की खाक जब पानी से भीग गई तब वह पत्थर से भी ज़्यादा सख्त बनी। इन्सान ने उसको नये पत्थर की सूरत देकर धरती पर बिछाया और उसकी संधों को तारकोल से भर दिया। तब इन्सान के कदमों ने अपने दिल में महसूस किया कि वह सख्ती ही नई ज़िन्दगी का एक कमाल है। उसकी बड़ी-बड़ी मोटरें पत्थर की सतह पर चलने लगीं। लोहे की पटरियां डालकर उस पर उसके बड़े-बड़े इंजन अपनी भाप, तेल और जोश के बल पर चलने लगे।

एक के बाद एक नई ज़िन्दगी अपने सपने को बनाने लगी, लेकिन हर बार जैसे वह एक दुःस्वप्न में थी। एक खूबसूरत बीमार औरत की तरह वह अपने सुन्दर सपनों को देखने लगी, पर हर सपने का आखीर एक खौफनाक डरावनापन था, जो बार-बार उसकी नींद में उसे चिल्लाने को मजबूर करता और दोनों हाथों को ऐसे चलाती जैसे पुराने लोग चुड़ैलों के ज़िक्र में कहा करते थे। इसकी वजह !

यह बम्बई है। इसको प्रणाम, इसके उस जीवन को प्रणाम जिसने इन्सान को मशीन का पुर्ज़ा बना दिया है। यह रही सदा उनकी, जो अपनी आंखें फाड़कर अपनी ही सूरत आईने में देखकर डरने लगे हैं। कहते हैं, मौत के पहले इंसान को अपनी शक्ल शीशे में दिखाई नहीं देती और वह अपने अन्त को पास जानकर भी अपनी स्मरण-शक्ति के बल पर यह अनुभव करता रहता है कि शीशे ही में नहीं, हर वस्तु में उसकी सूरत झलका करती है। इस वैभव की आत्मीयता एक-दूसरे पर बढ़ते हुए अविश्वास में है, ऐसे जैसे किसी बड़े ताकतवर आदमी को आज जीते-जी लाश समझकर उस पर मजबूरी का कफन उढ़ा दिया है और ज़िन्दा आदमी भी सबके बार-बार कहते रहने से शायद यही अनुभव करने लगा है कि वह **मर**

गया है, कि वह ज़िन्दा नहीं रहा है, और फिर उस ज़िन्दी लाश को देखकर इन्सान अपने-आप रोता भी है। वह रोने की आवाज़ इतनी वेदना और द्रावक यातना लेकर भी एक घुटती हुई हंसी की तरह गूंजती चली जाती है, समुद्र से समुद्र तक, सड़कों पर, चालों में, खोली में, फ्लैटों में, और फिर विशाल इमारतों में, एक अनवरत निनाद, जैसे अफ्रीका का न्याग्रा प्रपात गिर रहा है, अपनी समगति से भी उस पर झाग छा गए हैं, झाग जो आंखों को अंधा किए हुए हैं। उसके पास खड़ा आदमी सोचता है, और फिर भी सोच नहीं पाता। इसे न सोच पाने की कशमकश और जद्दोजहद का नाम है बम्बई।

होंठों की नफरत की फड़कन किसी के प्यार की एक व्यंग्य-भरी कहानी हो सकती है, लेकिन वह किसी के दिल को तसल्ली नहीं दे सकती। एक बच्चे की अबोध मुस्कराहट यही पूछ सकती है कि इस ज़िंदगी में कितनी खुशी है, कितना प्यार है। उसका जवाब देने के लिए यहां रुपया खनखनाता है। हर रिश्ता, हर सम्बन्ध धन के पैमाने से नापा जाता है, गोया ज़िंदगी एक पारदर्शी कांच के प्याले में उंडेली हुई शराब है, जो महंगी है, जिस पर बंदिशें हैं, जिस पर रोक हैं, पर उसमें फिर भी उबाल है, सबको खींच लेने की एक कशिश है, वह शराब एक नशा पैदा करती है, उसे पीकर लोग अपने-आपको ऐसे भूल जाते हैं जैसे चेतना उनकी अपनी नहीं।

बीस हज़ार वर्ष बाद जब एक बहुत बड़ा टीला खुदेगा और आज की बम्बई धरती की तहों में से निकलेगी तब इसके नक्शे और असलियत को देखकर नया आदमी कहेगा—उस बर्बर ज़माने में इन्सान कितना वहशी था क्योंकि तब उसके विचार तभी सुन्दर होते थे जो या तो रुपया कमा सकते थे, या वे विचार सुन्दर थे, जो उससे यह कहा करते थे कि रुपया कुछ नहीं है, उसपर ध्यान न दो; उसे, जो वह कह रहा है, करने दो। उसके बीच में मत बोलो। एक रास्ता वह था कि जिस पर ज़माना चला जा रहा है उसी पर चलना ठीक है; और दूसरा रास्ता वह था कि इस रास्ते के भले-बुरे के बारे में कुछ भी न बोलो, जो हो रहा है उसे होने दो; क्योंकि वह शाश्वत है।

शाश्वत ! इस प्रतारणा-भरे शब्द में मनुष्य ने अपना झूठा गौरव

खड़ा किया था। इसी के बल पर उसने यथार्थ छोड़कर अपने ज्ञान के वृक्ष से कच्चे फूलों को तोड़कर खाया था और पेट का दर्द होने पर उसने असंदिग्ध दु:ख से कहा था—मेरे ऊपर मेरा भाग्य है, मेरे भाग्य के ऊपर मेरा बस नहीं।

धरती हर ऊपर उड़ती चीज़ को अपनी तरफ खींच लेती है और अपनी परिधि के आकर्षण के बाहर नहीं जाने देती। सारा ज्ञान और चिंतन ऐसे ही अपनी परिधियों में पड़ा छटपटा रहा था।

बीस हज़ार वर्ष बाद नये आदमी ने हंसकर कहा है कि उस वक्त का इन्सान अपनी ही बंदिशों में मजबूर था। वह सोच सकता था, पर सोचता इसलिए नहीं था कि वह सोचकर अपने विश्वासों की सड़ांध को सूंघना नहीं चाहता था, क्योंकि जिन मुर्दा मछलियों की बदबू उसे सताती थी, उन्हें ही तो वह खाता था, उन्हीं में वह अपनी ताकत समझता था··· इसीलिए वह सड़ता भी था, गलता भी था, और अपने को तन्दुरुस्त भी समझता था।

सापेक्ष दृष्टि भी तब व्यर्थ है, जब उसके व्यवहार में कुछ नहीं है, उसके अन्तस्तल में यदि केवल शून्य है तो उसमें सत्य के उड़ते हुए पंछी को कहीं उड़ने की जगह नहीं है। वह पंछी भी जब गिरता है तो घिरन परेवा की तरह, उड़ा तो बहुत ऊंचा पर गिरा तो लीक बांधकर वहीं, जहां से वह उड़ा था।

जहां दासता स्वामित्व का धोखा था, यह उसी दुनिया की बात थी, जहां हंसने और रोने में भेद ही नहीं रहा था।

1

"शोभा ! शोभा !" डगर पर कठोर स्वर गूंज उठा ।

सांझ के झुटपुटे में शोभा डरी हुई भाग चली । उसकी भयभीत मुद्रा पर धुंधलके ने अपनी छाया डाल दी थी और वह इस समय प्राणपण से मुक्त होने की चेष्टा में लगी हुई थी । शराब की गंध फैलाता, कठोर हृदय छैला माधो उसके पीछे आंखें चढ़ाए भागता हुआ कहता जा रहा था, "कहां जाएगी चमको..."

हठात् शराबी एक पत्थर की ठोकर खाकर गिरा और उसने चिल्लाकर गाली दी ।

शोभा भागते-भागते एक घर में घुस गई और घुसते ही उसकी कंप-कंपी शान्त हो गई । अब उद्वेग वेदना बनकर उमड़ चला । वह चिल्लाकर गिरी । उसका साहस यहां आकर चकनाचूर हो गया था ।

उसकी चीख सुनकर बूढ़ी, रमेश की मां चौंक उठी । वह कोठे में बैठी खांस रही थी और खांसते-खांसते थक गई थी । "कौन ? कौन है ?" कहते हुए वह उठ खड़ी हुई और लड़खड़ाती हुई द्वार की ओर चल पड़ी । अंधेरे में से उसे सब स्पष्ट नहीं दिख रहा था ।

जब वह खांसती हुई दालान में आई तो देखा, शोभा औंधी पड़ी है; उसके बालों ने उसका मुंह ढक लिया है । वह फफक-फफककर रो रही है और अपने हृदय को बहाए दे रही है ।

बूढ़ी उसके पास आकर खड़ी हो गई । फिर धीरे-धीरे बैठकर उसके सिर पर हाथ फेरने लगी । शोभा रोती ही रही । बूढ़ी ने स्नेह से कहा, "क्या हुआ बेटी ?"

शोभा ने उत्तर नहीं दिया। बूढ़ी ने उसका मुंह अपने हाथों में ले लिया। उसने देखा—शोभा की आंखों में आंसू भरे थे। बूढ़ी समझ गई। उसका वृद्ध हृदय अपनी परिस्थिति से विचलित हो गया था। शोभा का शरीर क्या वास्तव में इतने भय का कारण हो सकता है ? और विक्षोभ आकर बूढ़ी के होंठों पर कांपने लगा।

"शोभा ! आज भी कोई बात हो गई ? भगवान ! क्या गरीबों का कोई मददगार नहीं ?" बुढ़िया ने आर्तस्वर से कहा और फिर कोई उत्तर न पाकर जैसे आकाश में महाशून्य को लक्ष्य कर अपनी यातना को उगल दिया, "भगवान ! तू जब आंधी चलाता है तब यह नहीं सोचता कि कितने फूल डालियों से टूटकर मिट्टी में मिल जाते हैं।"

ईश्वर का यह रूप आज उसकी अन्तरात्मा की कठोर विवशता के कारण फूट निकला था। आखिर मनुष्य कब तक सहे ! क्या उसके दुःख का कोई अन्त ही नहीं ? शोभा अब कुछ ठीक हो गई थी। उसने फफकते हुए ही कहा, "मां !"

एक शब्द और फिर वही घुटन !

"बेटी !" वृद्धा ने अत्यन्त द्रावक दुःख से उसके सिर पर हाथ फेरकर उसे एक शक्ति प्रदान करने का प्रयत्न किया। उस स्पर्श से शोभा का भय और कम हुआ। वृद्धा ने फिर अपने विचलित स्वर से कहा, "हिम्मत रख ! रमेश आकर इन गुण्डों को ठीक कर देगा।" शोभा के हृदय पर से एक गिद्ध आकाश में उड़ गया। "रो नहीं बेटी ! तेरी मां न सही, न सही, मैं तो हूं।"

वृद्धा का गला रुंध गया।

शोभा ने निराश दृष्टि से बूढ़ी की ओर देखा। बूढ़ी उस दृष्टि को जैसे सह नहीं सकी। उसने सिर झुका लिया और आंखें पोंछकर कहा, "लेकिन ! उसकी कोई खबर नहीं। कितनी चिट्ठियां डलवा चुकी हूं, पर रमेश न जाने क्यों हम सबको भूल गया है...?"

•

और सचमुच रमेश ममता के अतिरिक्त सब कुछ भूल गया था। उसे न सांझ के धुंधलके का ध्यान था, न यही उसे ज्ञात था कि पानी बरसने

लगा है। वह बिना रुके चलता चला जा रहा था। प्रेम की वासना ने उसके दृष्टिकोण ढंक दिए थे।

शहर! बम्बई! विराट से विराटतर! कुछ भी यहां सीमित विराट नहीं दिखाई देता। सब कुछ अपनी हलचल और परेशानी में मजबूर! यहां जीवन एक निरन्तर दौड़ है। दौड़, जिसकी कोई भी संतुष्टि नहीं। गांव से दूर, गांव का छायाचित्र भी उसके मस्तिष्क में नहीं। वह अपने ध्यान में चलता चला जा रहा है। ममता घर ही होगी। इस समय संभवतः वह उसकी प्रतीक्षा कर रही होगी। रमेश के हृदय में एक नया उत्साह छा गया। और भी तेज़ी से पांव उठने लगे।

बहुत चलने के बाद वह एक बंगले के दरवाज़े पर पहुंचा। बंगला शांत और नीरव बरसते पानी में फेन के पीछे से दिखते एक झिलमिल पर्दे-सा दिखाई दे रहा था। उसकी खिड़कियों पर लटकती हरी बेलों पर टप-टप कर पानी गिर रहा था और शीशों पर सफेदी-सी छा गई थी, जिसने पार-दर्शी तत्त्व को ढंक दिया था।

लॉन पार करके जब वह भीतर पहुंचा, पोर्टिको में जाते ही वह रुक गया। उसने दृष्टि भरकर देखा। जो कुछ देखना था आज भी वह उसी रूप में उसके सामने था, जैसी सदा से ही वह कल्पना करता चला आ रहा है। मोटर के मडगार्ड पर बैठी-सी ममता कुछ सोच रही थी। वह अपने चिंतन में तल्लीन थी। रमेश की इच्छा हुई, उसे टोककर चौंका दे, परन्तु फिर उसका रूप उसकी आत्मा पर अपनी झीनी परछाईं डालने लगा। रमेश उसे एकटक मोहित-सा देखता रहा। ममता जानती थी कि वह आ गया है। शायद वह चाहती थी कि वह स्वयं बोले, परन्तु उसके मौन से ममता की अहम्मन्यता को पूर्ण तृप्ति मिल गई। और धीरे से मुड़कर ममता ने शोखी से देखा और मुस्कराई। उस मुस्कराहट से रमेश को ऐसा लगा मानो उसे एक बिजली का तार छू गया है, पर वह उसे झेल गया है।

"भीग गए हो?" ममता ने पूछा।

"हां, रास्ते में पानी आ गया था।" रमेश ने धीरे से कहा।

"तो कहीं रुक जाते।" ममता ने अधिकार की भावना से कहा। रमेश

को अच्छा लगा, पर उसका हृदय उसके स्वर के सहसा उतर जाने से एक आघात पाकर सन्नद्ध-सा हो उठा। उसे लगा शायद ममता उसे निर्बल समझती है। उसने क्षण-भर ममता को घूरकर देखा और फिर वह धीरे से बड़बड़ा उठा, "मैं न लौटना जानता हूं, न रुकना। जिस राह पर चल पड़ता हूं, वहां से फिर हटना नहीं जानता।" उसने एक बहुत ही गंभीर बात कही, जिसका वह ममता पर गहरा प्रभाव पड़ते देखना चाहता था, परन्तु ममता हंस दी। उसने होंठ मोड़ लिए।

"अजीब आदमी हो!" वह फिर मुस्कराई।

"सचमुच?" रमेश ने पूछा। जैसे इस बात से उसे चोट पहुंची थी।

ममता ने बात बदलकर कहा और अब उसके स्वर में आश्चर्य था, "अरे! कपड़े तो बदल लो, अब चलकर।" उसकी पतली आवाज़ बंगले के भीतरी भाग में गूंजकर घुस गई, "आया!"

भीतरी द्वार से एक बूढ़ी निकली। वह नितान्त सौम्य थी और एक सफेद साड़ी पहने थी। उसके दांत चमकदार और कुछ बड़े थे और आंखों के कोनों पर कुछ झुर्रियां थीं। वृद्धा के होंठों पर एक मृदुलता थी, जो अदब से मिलकर एक अजीब-सा भाव बन गई थी। उसको देखकर लगता था कि वह अब भी आयु से अधिक शक्ति रखती है और सहज ही समझौता करना नहीं जानती।

फिर बूढ़ी ने रमेश को देखा। वह भीगा खड़ा था। बूढ़ी की आंखों में कुछ बहुत पुरानी याद कांपी जो फिर छिप गई।

"ओह हां!" ममता ने जैसे याद किया और इसके साथ ही उसके होंठों पर एक मदभरी उलझन-सी दिखाई दी, "मैं तो भूल ही गई थी। मेरे पास तुम्हारे लायक कपड़े हैं कहां? चलो।" वह मडगार्ड का सहारा छोड़कर उठ खड़ी हुई, "तुम्हें घर छोड़ आऊं।" फिर उसने उसी लापरवाही से बूढ़ी की ओर बिना देखे उसे लक्ष्य करके उपेक्षा से कहा, "तुम जाओ!"

आया चली गई। उसके नयनों में इस समय पहले वाला असन्तोष फिर मुखर हो गया और वह कमरे में खो गई।

रमेश अभी तक चुप खड़ा था। ममता को बढ़ते देखकर उसे हठात्

ही अपनी वास्तविकता का ध्यान हो आया। बोला, "नहीं, मैं चला जाऊंगा।"

"नहीं, चलो, मैं तुम्हें छोड़ आऊं।" ममता ने आग्रह से कहा और उसे पढ़ने की चेष्टा करने लगी।

"नहीं।" रमेश ने फिर उसी उदास स्वर में कहा, "तुम्हें चलने की क्या ज़रूरत है? मुझे क्या रास्ता नहीं मालूम?"

"क्यों? मेरे चलने पर तुम्हें कुछ आपत्ति है?" ममता ने कहा। अब उसके स्वर में स्नेह का गीलापन था।

रमेश चुप हो गया। उसने देखा—ममता के नेत्रों में एक चमक थी। वह समझ नहीं सका कि इसका अर्थ क्या था?

कोई पथ नहीं था। ममता के सामने वह कुछ कहने का साहस करके भी स्पष्टतया कह नहीं पा रहा था; क्योंकि ममता ने उसका हाथ पकड़ लिया।

वह उसकी हिचकिचाहट पर कोई ध्यान नहीं दे रही थी। वह उसे पहुंचाने में अपने स्नेह का गौरव दिखा रही थी। रमेश परेशान-सा दिखाई दिया। वह लाचार हो गया।

ममता ने उसे गाड़ी में बिठाकर गाड़ी स्टार्ट कर दी।

बादल आकाश में गरजता हुआ उठता चला जा रहा था और उसकी काली घनी हुमस हवा पर कांप रही थी।

मोटर अहाते के बाहर निकल गई। पानी की बूंदें अब तेज़ हो गई थीं और सामने के शीशे पर बार-बार बूंदें इकट्ठी हो जाती थीं और आप ही-साफ हो जाती थीं। रमेश के हृदय में भी ऐसी ही दुविधा थी, जो बार-बार फिरती, बार-बार मिट जाती। ममता प्रसन्न-सी दिखाई दे रही थी।

रमेश अपनी ही चिन्ता में आकुल चुप बैठा रहा। पानी का वेग कम होने लगा और वे भारी बूंदें अब झीनी हो गईं। पानी की खड़ी झड़ी को हवा की हिलाई पानी की धारा, तिरछी होकर काटना छोड़ चुकी थी।

कार बढ़ती ही जा रही थी। रमेश के हृदय में एक अजीब विचार

आया। कहां ले जा रही है यह उसे ? उसने उसके घर का पता तक नहीं पूछा था।

पानी बरसना बंद हो चुका था। अब कभी-कभी कोई भूली-भटकी बूंद आकाश से टपक पड़ती थी।

ममता निस्तब्ध बैठी गाड़ी चला रही है। वह चुपचाप सामने के विशाल पथ पर अपनी मोटर बढ़ाती जा रही है; जैसे कोई छोटा पशु भाग रहा है, भागता जा रहा है और ममता उसकी गति में भूली हुई है। रमेश उसे देख रहा था; जैसे वह खो गया है। उसकी प्रत्येक भंगिमा में उसे वही लावण्य दिखाई दे रहा है जो आकाश के फटते मेघों में बिखर गया है।

ममता उसकी ओर देखकर मुस्कराई। उसमें स्नेह नहीं था, न कुतूहल। वह एक आत्म-संतोष की फड़कन थी।

उसके बाल हवा से फरफराते हुए उड़-उड़कर रमेश के मुंह पर आ रहे थे। उनमें से सुगंधि आ रही थी और वे मुलायम थे। इतने रेशमी कि उनका स्पर्श एक मंथर मादकता की भांति झूम रहा था। रमेश देखता रहा। उसने धीरे से उसके बालों को सहला दिया। उसके हाथ का स्पर्श पाकर ममता का ध्यान टूटा।

ममता चौंक उठी। गाड़ी चलाते हुए ही जैसे कुछ नहीं हुआ, ममता ने सतर्कता से ग्रीवा मोड़े बिना ही, गर्व से किंचित् मुस्कराकर उसकी ओर आंखों की कोरों से देखकर कहा, "क्या देख रहे हो ?"

"सब कुछ।" रमेश ने उत्तर दिया।

ममता ने फिर देखा। उस दृष्टि के आघात से जैसे रमेश का मन अत्यंत आर्त होकर भीतर ही भीतर मसोस से भर गया।

ममता ने मोटर रोक दी। रमेश का स्वप्न टूट गया। आकाश में नीलम घुल गया था। चमकती नीलिमा नयनों की प्रशांत गहराई-सी फैली थी और क्षितिज पर कुछ फेनिल मेघ अब झुक से गये थे। समुद्र की लहरें अनवरत निनाद करती बार-बार दौड़ रही थीं; एक-दूसरी का पीछा कर रही थीं। बार-बार घिरते झाग और फेन हरे किनारों की लहरों में थपेड़ा मारते और फिर हरहराकर भागते, किनारे पर छितर जाते। समुद्री पक्षी

उड़-उड़कर आकाश में चिल्लाते, कांपकर सफेद से पंख फटफटाते।

ममता और रमेश मोटर से उतर पड़े। ममता प्रशांत दिख रही थी। रमेश का अथाह गाम्भीर्य उसे मापने का प्रयत्न कर रहा था। रमेश की आंखों में सूनापन नहीं है, परन्तु एक दाह है, ऐसे जैसे भीतर कहीं प्रचण्ड अग्नि है, और धुआं निकल रहा है पर दिखाई नहीं देता, अपने-आपमें लय हो गया है। उस मौन पर भावों की लहरें अरूप होकर कांप रही हैं और कहीं रुकने का नाम नहीं लेतीं।

"कितना सुन्दर है?" ममता ने लम्बी सांस लेकर कहा।

"पर तुमसे सुन्दर कुछ नहीं।" रमेश ने धीरे से उत्तर दिया। उसके होंठ कांप उठे थे, नयन झुक गए। वह विभोर हो चला था। आज उसकी तृष्णा साकार तृप्ति बनकर उसके सामने खड़ी थी।

अंधेरा झुक चला था। धीरे-धीरे महानगर की बिजली की बत्तियां जल उठी थीं। उस विराट व्यापार नगर से मनुष्य समुद्र तीर पर ऐसे निकल आए थे जैसे जल का जन्तु सांस लेने को बाहर निकल आता है। ममता शांत ही रही, परन्तु रमेश को अचानक ही अब परिस्थिति का ध्यान हो आया। उसने चौंककर कहा, "कपड़े तो सूख गए।"

ममता समझी। कहा, "तो फिर एक परेशानी तो दूर हो गई।" उसने मुड़कर उसी मीठे स्वर में कहा, "चलो, रमेश!"

"कहां?" रमेश ने चौंककर पूछा, "अब कहां चलना चाहती हो?"

"तुम्हें घर छोड़ आऊं।" ममता ने कहा।

"अब कहीं जाने की इच्छा नहीं होती।" रमेश ने टाला। वह उस समय अपने को महान कलाकार के रूप में प्रस्तुत कर रहा था, पर उसके स्वर में कोई गहराई नहीं थी, जो ममता पर प्रभाव डालती। रमेश विफल हो गया।

ममता हंसी। कहा, "पागल! चलो।" स्नेह का अतिरेक हो गया। जैसे प्याले से छलककर शराब गिरी और भिगो गई। ममता के हाथ ने रमेश को पकड़ लिया। रमेश लाचार हो गया। उसे चलना पड़ा। रमेश जाकर उसके साथ गाड़ी में बैठ गया। कुछ जवान मछेरे मछलियां पकड़-कर ला रहे थे। उस समय उनके सुन्दर शरीर देखकर ममता ने कहा

कुछ नहीं, पर वह एकटक देखती रही। काले-काले शरीर, सुते हुए मांसल पेशियों वाले। चंचलता जैसे देह से फूटी पड़ती है। और निकले हुए वक्ष-स्थल, सुदृढ़ भुजदण्ड। बिजलियों की तरह चपल। यह जब लहरों पर झूलते हैं तो ऐसा लगता है जैसे समुद्री पशु हैं जो जल के इतने अधिक अभ्यस्त हैं।

"क्या देख रही हो ?" रमेश ने उसे कहीं देखते हुए देखकर पूछा।

"देखती हूं गरीब आदमी भी देखने में अच्छा मालूम देता है।"

रमेश के हृदय पर चोट पहुंची। तो यह रूप की पुतली दुनिया में ऊंच-नीच को खूब समझती है। यह नहीं है कि भूली हुई है।

"धन रूप को खरीद सकता है, बना नहीं सकता।" रमेश ने उसे अपने व्यंग्य से कचोटने का यत्न किया। "संसार में मेहनत करनेवाले से सुन्दर कोई नहीं होता।" वह कहता गया। उसकी दृष्टि ममता के मुख पर गड़ गई थी और स्वर में एक तिक्तता अपने-आप उभर आई थी जैसे आकाश के शून्य और काले वक्ष पर कीलों की तरह तारे निकल आए थे।

"दीपक की सुन्दरता देखने के लिए पहले सूरज को डुबाकर अंधेरा करना पड़ता है रमेश !" ममता ने जैसे तत्पर उत्तर दिया। वह इस सौंदर्य की विवशता जानती थी कि यह दूर से देखने को ही अच्छा मालूम देता है। उसके हाथ अपने-आप चले और पहिया घूमा, पांव ने कुछ हरकत की; गाड़ी खिसकी। उसकी ओर उठी हुई भौं तनी रही। रमेश चुपचाप देखता रहा। गाड़ी चलाते हुए ममता कुछ नहीं बोली।

"कहां जाना है ?" उसने हठात् पूछा।

"मैं राह बताता हूं।" रमेश ने कहा।

रात आ गई थी। अंधेरा उतर आया था। अब केवल समुद्र की लहरें सुनाई देती थीं। काली छाया में कांपता समुद्र ऐसा लगता था जैसे वहां की धरती पिघलकर धीरे-धीरे खौल रही है और एक बदबू आ रही है।

अब वे फिर शहर में आ गए थे। दोनों ओर विराट अट्टालिकाएं खड़ी थीं और खिड़कियों में से रोशनी चमक रही थी, जैसे काले आदमी के शरीर पर पीले-पीले फोड़े निकल आए हों। जिनके हृदय में उद्वेग की मात्रा कम है, उन्हें वे दूर से परीदेश के महलों में चमकते फानूस से दिखाई

देते हैं। रमेश रास्ता बताता जाता था और ममता गाड़ी मोड़ती जा रही थी। ममता के हृदय में अब एक उदासी भरती जा रही थी।

कार एक संकरे रास्ते के सामने खड़ी हो गई। ममता ने देखा, यहां के घरों पर वही वीरानगी थी जो एक विधवा के मुख पर होती है। और अब बरसाती पानी के बहने से काली पड़ी लकीरें उसके बिखरे हुए मटियाले बालों-सी दिखाई देती हैं। एक निस्तब्धता है और फिर हवा में एक अवसाद है। फिर भी इसमें कीड़ों की-सी कुलबुलाहट वाली जिन्दगी है।

मद्धिम चिराग जल रहा था। उसका प्रकाश ऐसे ही डरता हुआ अन्धकार में कांप रहा था जैसे हूस मर्दों के बीच में कोई सोलह बरस की लड़की डरते-डरते पांव धरती है, अपनी जवानी से खुद ही डरती हुई।

रमेश ने कहा, ''और आगे बढ़ो ममता, और आगे बढ़ो।''

ममता की परेशानी प्रकट हो गई। वह इस भाग में आकर प्रसन्न नहीं हुई थी। और रमेश के स्वर में मुखर ही एक व्यंग्य था जिसने उसके आराम में पले जीवन पर कचोट की थी। ममता को यह अच्छा नहीं लगा।

"कहां रहते हो तुम ? शहर का यह हिस्सा तो मैंने कभी नहीं देखा।" ममता ने खीझकर कहा। वह सदैव ही सभ्य लोगों में पली थी। उसने फूल तब देखे थे जब वे गुलदस्तों में पेश किए गए थे। उसने कभी माली के उस जीवन को नहीं देखा था जिसको कीचड़ और कांटों से भी पाला पड़ता था। स्पष्ट ही कालेज का एक विद्यार्थी जो ऐज़ेम्टी और हाफिज़ को सुनाता था, बैंघम और लॉक पर बहस कर सकता था, ऐसी जगह रहता था, यह उसने स्वप्न में भी नहीं सोचा था।

रमेश हंसा। संकोच का स्थान अब नहीं रहा था। उसके अभावों की अतृप्ति अब पांवों के नीचे कुचल जाने के स्थान पर उलटे उसके पांव पकड़कर उसे गिरा लेना चाहती थी।

"ये गरीबों के मुहल्ले हैं, तुम्हें यहां आने की ज़रूरत ही क्या पड़ी होगी ? यहां धूप भी बदबू को नहीं मिटा सकती। मेहनत करनेवाले वे लोग, जो तुम्हारी दुनिया को सुन्दर बनाते हैं, यहीं गरीबी की कैद में सड़ा करते हैं। यहां न कोई अपने खानदान की डींग हांकता है, न धन की

चमक से दूसरों को अंधा वना सकता है। यहां एक आदमी दूसरे आदमी को केवल इसीलिए पहचानता है कि वे दोनों आदमी हैं।" रमेश का स्वर भारी हो गया था। वह भारीपन एक गतिरोध था जैसे उसके हृदय पर धरा हुआ पत्थर पुकार उठा था कि मैं कुचला गया हूं, तुम संभले रहो।

ममता चुप रही। उसके पास उत्तर देने को विक्षोभ के अतिरिक्त कुछ नहीं था। पर अव कुतूहल कहता था 'और देख, सव देख।' वे दोनों चुपचाप चलते रहे।

फिर वे एक वड़े चौक में घुसे। चौक पक्का था। इस समय उसमें एक हल्की-सी हलचल दिखाई दे रही थी। चौक के चारों तरफ छोटे-छोटे कई कमरे वने थे। उनके दरवाजे पुराने थे, दीवारें मैली थीं और सफाई कहीं भी दिखाई नहीं देती थी।

चौक में एक पैट्रोमैक्स की वत्ती जल रही थी। उसका तीव्र प्रकाश आंखों को शांति देने के स्थान पर चौंधिया रहा था। उस तीव्र प्रकाश में वहां की प्रत्येक वस्तु और अधिक मैली दिखाई देती थी जैसे सड़कों के नारंगी प्रकाश में मनुष्य शव-सा था। कुछ लोग इस समय एक पंक्ति में वैठे थे। एक नाई उनकी हजामत वना रहा था। वह एक ओर से उनके वाएं गालों पर सावुन लगाता चला गया, फिर लौटकर दाएं पर लगाने लगा।

सामने से गाता हुआ एक भिखारी आ गया था। नाई गवैये के पास जा खड़ा हुआ। गानेवाला स्पष्ट ही कोई भिखारी किस्म का आदमी था। इसके पास एक वाजा और उसका गला ही सम्पत्ति थी। नाई मस्त हो गया। हजामत के भूखे लोग देखते रहे। देर होने लगी।

एक ने चिढ़कर कहा, "ऐ ऐ...चलो चलो..."

कहनेवाला मराठा था। सब उसे मवाली कहते थे। गाना अब अपने स्वरों को फैला रहा था जैसे वह एक गिद्ध था, जो वछड़े की लाश पर मंडरा रहा था अन्त में उसे झपटकर खा जाने को।

"आता हूं भाई। हजामत तो यार रोज ही होती है, गाना कौन रोज-रोज होता है?" नाई ने मस्ती से कहा। उसके गाल वैठे हुए थे, और

आंखों के नीचे कुछ ऐसी फूलन थी जैसे वहां सूजन आ गई थी। रमेश ने कहा, "चलो।"

ममता चौंक उठी। उसने रमेश का हाथ पकड़ लिया। उसे लगा; वह अजीब जगह आ गई थी। रमेश उसकी परेशानी को समझ गया। उसने धीरे से उसे सहारा दिया और कहता गया जैसे यह कोई बात नहीं, चलो भी ममता। दिनभर मेहनत-मजदूरी करके ये लोग रात में ही हजामत करवाने की फुरसत पाते हैं। और ममता की ओर बिना देखे उसने मुड़कर कहा, "क्यों, कुछ अजीब-अजीब-सा लगता है न ?" ममता का उत्तर पाए बिना ही वह व्यंग्य से मुस्कराया।

ममता नाक सिकोड़कर मुस्कराई। उसे देखकर कुछ लोगों ने आपस में इशारे किए, जिसका स्पष्ट अर्थ था कि रमेश एक चलताऊ औरत ले आया है, और बम्बई में ऐसी औरतों की कमी ही क्या है ? ममता के हृदय को इससे अपमान-सा अनुभव हुआ। वे एक घर में घुसे। घर था एक कमरा। उसके साथ गुसलखाना आदि अलग नहीं थे। वे दूर और अलग थे। कमरे में ही एक घेरा एक कोने में बना था। उसी में खाना पक सकता था। एक टूटे हाथ की कुर्सी पर ममता बैठ गई। रमेश खड़ा रहा। अब वह बिलकुल अपराधी-सा लग रहा था। राजकुमारी ने जैसे आकर अपने भिखारी का घर देखा था। ममता लज्जित थी कि यह आदमी क्यों उसका प्रेमी होने का दावा रखता है, "तो सरकार यहां रहते हैं ?" उसने तीखे स्वर से कहा।

"जी हां।" रमेश ने सिर झुकाकर स्वीकार किया।

ममता का व्यंग्य इतना ही नहीं था। रमेश उस सबको समझ रहा था, पर उस समय उसमें एक प्रतिकार की भावना आई। वह स्वयं तो उसे लाया नहीं। जब आप ही आई है तो चिढ़ती क्यों है ?

"यहां तो बड़े मज़ेदार लोग रहते हैं।" ममता ने घृणा से कहा।

"भूखे आदमी को," रमेश ने तड़पकर उत्तर दिया, "पिंजड़े में बन्द करके उसे बाहर से रोटी दिखाकर ललचाने से वह भूखा सचमुच बड़ा मज़ेदार लगता है। इंसान इस दुनिया में बंधी हुई मुट्ठियां लेकर आता है लेकिन गरीबी जब उनके हाथों को खोल देती है तब वह सचमुच बड़ा

मजेदार लगता है।"

ममता का हृदय पसीजा। ठीक ही तो है, रमेश का क्या दोष? उसने बड़ी हमदर्दी से उसका हाथ पकड़कर कहा, "लेकिन यहां तो कोई दिलचस्पी नहीं। आखिर तुम अपना वक्त यहां कैसे काटते हो?"

रमेश को लगा—यह सहानुभूति नहीं थी, यह दूसरा प्रहार था। उसने अपनी उसी कटुता से उत्तर दिया जो उसमें कड़वाहट भर रही थी। यहां जिन्दगी के सिवाय कोई दिलचस्पी नहीं। और वक्त? उसे काटना नहीं पड़ता। वह अपने-आप कटता है।

ममता का दम घुटने लगा। सामने वही चूना उखड़ी दीवारें और धरती पर उखड़ा सीमेंट। एक अजीब-सी बू। कह नहीं सकते वह बाटों की गन्ध थी या वैसे ही गन्दगी थी।

"चलो, मुझे मोटर तक पहुंचा दो।" ममता ने कहा, परन्तु रमेश स्थिर खड़ा रहा। उसने निगाह भरकर ममता को देखा जो सामने छुई-मुई की तरह बैठी थी। उसने अपने ठंडे स्वर से रुक-रुककर कहा जैसे वह सुई से बोरा सी रहा था, "तुमने चट्टानों से टकराकर टूटती लहरों को जी भरकर देखा था। एक बार दौलत के पत्थरों से टकराकर टूटती इंसानियत को भी देख लेतीं।"

ममता खड़ी हो गई। अब उसके पास और सब्र नहीं था। अजीब व्यक्ति है यह, क्या है इसकी अनुभूति? ममता समझी नहीं। उसके कंधों पर लहराते बालों पर हल्की रोशनी पड़ रही थी और वह गम्भीर थी। उसने उससे धीरे से कहा, "तुम सचमुच यह समझते हो कि मजबूरी से समझौता कर लेना बहादुरी है?"

रमेश सोचने लगा। ममता की बात उसकी शिक्षा से सीधा प्रश्न था। क्या यह सब ऐसा है जिसे आदर्श बनाया जा सकता है?

"चलो! कल कालेज आओगे?" ममता ने बात बदली। परन्तु रमेश इतनी आसानी से अपनी अभाव-भरी दुनिया को नहीं भूल सकता था।

"चलो! देखा जाएगा।" उसने कहा।

दोनों बाहर निकल आए। चौक पार करते समय एक स्त्री, जो नाक में बड़ी लौंग पहने थी, कह उठी, "भइया, कैसे पटेगी?"

रमेश ने उत्तर नहीं दिया। ममता ने कदम तेज़ किए। रमेश को मन ही मन कुछ हंसी भी आई।

2

सेंट स्टीफेंस कालेज संसार के विशाल क्षेत्र में एक छोटा-सा दायरा था जिसमें अध्यापक अपनी विद्या को पैसे से तोलते और विद्यार्थी अपने वर्तमान को भविष्य की छोटी पगडंडी से, जो एक विस्तीर्ण पथ पर ले जाकर छोड़नेवाली थी। प्रत्येक वर्ष ज्ञान के सैकड़ों बुभुक्षु यहां से निकलते और ऐसे जैसे किसी गुंडे की हुकूमत में सैकड़ों भिखारी पल रहे थे, जो कुछ ही दिन बाद सड़कों पर फेंक दिए जाएंगे, रोटी कमाने के लिए। तब शेक्सपियर पर राशन के रजिस्टर चढ़ जाएंगे और फरेब की उन मस्त आंखों पर मजबूरी का मोतियाबिंद पैदा हो जाएगा। लड़कियों की उम्र की शोखी पति न मिलने पर एक अजीब कड़वाहट में डूब जाएगी और वे मास्टरनियां बनकर प्यासी जीभ से कठोर वास्तविकता के पैने लोहे के उस्तरे पर चोट करेंगी; लोहा नहीं कटेगा, जीभ कट जाएगी और पुरानेपन और नयेपन की खिचड़ी बनकर दोनों जीभें लटकती रहेंगी। प्रोफेसर सरकारी ओहदों की ख्वाहिश करेंगे या अपनी तनख्वाह सलामत, वे मार्क्स-वाद के कुल्हड़ फोड़ेंगे और यों ही बम्बई की नीम बेहोश जीस्तपरस्ती अपनी नाकाम हस्ती से समझौता किया करेगी। सेंट स्टीफेंस नहीं, सब कालेज ऐसे ही होते हैं। जब परेशान विद्यार्थियों के समूह में कुछ उफान आता है तब हड़ताल आती है और वे सब लड़ने को तैयार होते हैं, और इस तरह आज़ादी की तरफ घटते-घिसते, यह फिर भी आगे बढ़ते ही रहते हैं।

प्रोफेसर होल्कर लाइब्रेरी में काम कर रहा था। वह एक पैंतीस बरस का आदमी था। वह अपने विभाग का हेड था, हालांकि उसके मुख

पर-वह गाम्भीर्य अभी तक नहीं आ सका था, जो उस आयु पर आ जाना चाहिए था; क्योंकि उस पर किसी प्रकार का भी वोझा नहीं था।

अरुणा उसकी कृपापात्री थी। वहुधा वह उसके घर भी जाती, पढ़ती। कुछ लड़कियां व्यंग्य भी करतीं, किन्तु अरुणा ने देखा कि प्रोफेसर कागज़ पर रखे पेपरवेट की भांति उससे सदैव ही अलग रहता था।

"प्रोफेसर साहव !" अरुणा ने सामने नमस्कार करके कहा।

"कहिए ! आप हैं !" प्रोफेसर ने निगाह उठाकर कहा। अरुणा मुस्करा रही थी। उस समय प्रोफेसर हठात् गम्भीर हो गया। उस मौन का अर्थ था 'आगे कहिए'। अरुणा को कुछ नहीं सूझ सका। क्षण-भर चुप-चाप देखती रही और फिर जैसे वात चलाने को ही उसने कहा, "प्रोफेसर साहव ! वह आपने उस दिन कहा था कि हिन्दुस्तान में इंसान इतना वंधा हुआ है कि वह चाहे भी तो प्रेम नहीं कर सकता। और ..." कहकर उसने प्रोफेसर पर गूढ़ दृष्टि डाली।

"मैंने गलत कहा था ?" प्रोफेसर ने पूछा। वह जैसे उसे टालने के यत्न में था।

"मैं तो वैसा नहीं समझती।" अरुणा ने भौंह उठाकर कहा।

"मेरे-आपके मानने न मानने से हिन्दुस्तान की असलियत को तो झुठलाया नहीं जा सकता।" प्रोफेसर ने मुस्कराकर उत्तर दिया। अरुणा के नेत्रों में इस समय कुछ था जो विना भाषा के ही भावविनिमय करने का यत्न कर रहा था।

दूर से ममता ने देखा, अरुणा अपने प्रोफेसर के पास खड़ी है। उसे कुछ हंसी आई। तो अरुणा का काम चल रहा है ! ममता को शीघ्रता से जाते देख मनोहर ने रोका, "खैर तो है ?"

"वला से आपकी।" वह रुकी।

मनोहर मुस्कराया, "कहिए !"

ममता की दृष्टि अरुणा पर ही थी। उसे मनोहर के समान आवारा से सहानुभूति तो थी, पर अव ? उसने कहा, "अच्छा मनोहर, मैं तो चली।"

"प्रोफेसर के पास ! ज़रूर भई ज़रूर," मनोहर ने जेव को वाहर उलटकर सिगरेट का चूरा गिराते हुए कहा, "चलते का नाम...गाड़ी है..."

क्यों न हो···"

"शैतान !" ममता ने कहा, "रिपोर्ट कर दूंगी। याद रखना नहीं तो।"

ममता प्रोफेसर के पास आई तो उसे न अरुणा ने देखा, न प्रोफेसर ने। कुछ देर चुपचाप खड़ी रही।

"नमस्ते !" उसने कुटिलता से मुस्कराकर कहा।

अरुणा ने देखा। दुविधा में पड़ गई। अब किधर देखे ! लाचार धरती की ओर देखने लगी।

प्रोफेसर उस समय कह रहा था, "धन मनुष्य को अन्धा बनाता है। वह अपने लाभ के लिए सब कुछ भूल जाता है। तुम अभी बच्ची हो, समझ नहीं सकोगी।"

हठात् प्रोफेसर का वाक्य कट गया। ममता ! वह उससे प्रसन्न नहीं था। ममता की तीखी दृष्टि में एक रहस्य था। जैसे वह बहुत कुछ जानती है। नमस्ते करके अपने को बहुत व्यस्त प्रकट करता हुआ, अरुणा को छिपी दृष्टि से देख प्रोफेसर कुछ परेशान-सा चला गया।

"वह तो तुझे बच्ची समझता है और तू उसे···" ममता ने कहा और अपनी बात पूरी करने के पहले ही उसे हंसी आ गई। अरुणा चिढ़ी। गालों पर रक्त की हिलोल-सी कांप उठी और उसने खीझकर सुस्थिर होते हुए कहा, "चल, चुप रह। कल शाम कहां चली गई थी ?"

"अपने प्रेमी का घर देखने गई थी।" ममता ने कहा। उसके रेशमी वस्त्रों से लाइब्रेरी में चौंध-सी झांई मार रही थी। उसके शरीर से उड़ती पाउडर और सेंट की गन्ध से अरुणा की नाक भी रस से भीनी हो गई।

"रमेश का ?" उसने कहा।

"हां।" ममता ने कठोर स्वर से कहा।

अरुणा समझी नहीं। एकदम ममता का मन ऐसा क्यों उचाट खा गया। धीरे से पूछा, "कहां रहते हैं ?"

"उफ ! कुछ न पूछ !" ममता ने उड़ते हुए स्वर से उत्तर दिया, ऐसे जैसे वह उन सबके विषय में सोचना भी नहीं चाहती थी। वह जैसे एक दुःस्वप्न था, उसमें कोई आनन्द नहीं था। अरुणा समझ नहीं सकी। उसे घूरती रही। जैसे यह अभी और कुछ जानना चाहती थी। परन्तु फिर

उसे स्वयं ममता के प्रति अरुचि हो गई। "रमेश से इतनी उपेक्षा ! क्यों ?"

"शाम को क्लब चलेगी ?" ममता ने कहा।

क्लब ! अरुणा के दिमाग में एक तार छू गया, जिसने उसे झटका दिया। वह वहां क्यों जाएगी जहां धन का आडम्बर ही जीवन का एकमात्र आधार है ?

"नहीं, मुझे वहां अच्छा नहीं लगता।" उसने कहा। "तू वहां क्यों जाती है ? मैं जाती हूं तो मेरा दम घुटने लगता है, सब कुछ बनावटी, कोई···"

"मुझे तो सारी ज़िन्दगी का आराम वहीं दिखाई देता है।" ममता ने उसका वाक्य काटकर विभोर स्वर से कहा। वह किसी भी प्रकार अपने विचारों को ठेस लगते नहीं देखना चाहती थी। उसके इस दृढ़ विश्वास से अरुणा चौंक उठी। उसने क्षीण प्रतिवाद किया कि उसकी आत्मा का स्वर स्वयं दब गया, "आराम ? वह विलायत की झूठी नकल ? उसमें कोई किसी का हमदर्द नहीं होता।"

अरुणा समझी थी कि उसने ममता के मर्म पर आघात किया था।

"हमदर्दी गरीबी की निशानी है अरुणा ! जिनके पास सब कुछ होता है वे सब कुछ कर सकते हैं। मुझे तो क्लब में जन्नत दिखाई देती है···"

अरुणा ने सुना और जीभ काट ली। उसके बाद वास्तव में वे परस्पर अपने पुराने सौहार्द से बातें नहीं कर सकीं, जैसे मर्यादा के पानी ने भंवर डाल दिया था और दोनों अपनी-अपनी नाव को उससे बचा ले जाने के यत्न में अपनी-अपनी नावें खे रही थीं।

ममता हर शाम को क्लब जाती थी। उस समय उसका सौन्दर्य अपनी मादकता के वाष्प पर झूमती रागिणी की भांति उठता, वायु में फहरता और दर्शकों को एक कसक देता हुआ लय हो जाता।

क्लब का वातावरण ऐसा ही था। धनी लोग आकर नितांत कृत्रिमता से एक-दूसरे से मिलते; क्योंकि उनके जीवन का आधार, किसी मानवीय भावना का सौहार्द नहीं था, वह चमकते सिक्कों या नोटों की गड्डियों पर निर्भर होता। फानूसों में जलते बल्बों का रंगीन प्रकाश धरती की चम-

चमाती आंख पर गिरता और जूतों से उसे कुचलते हुए वे मदांध प्राणी अपनी झूठी किलकारियों में डुबा देते।

बैरिस्टर बिहारीलाल की मस्त आंखों में एक सुरूर था। वह स्वस्थ और मांसल शरीर का व्यक्ति बिलकुल पेरिस के फैशन के कपड़े पहनता। उसके गेहुएं रंग ने उसे एक आकर्षण दिया था। वह ऐसा कुछ कलमतराशा-सा दिखाई देता था जैसे किसी ने अच्छे सूट के कोट की ऊपर की जेब में तह करके रेशमी रूमाल लगा लिया हो।

"पीकर सो जाएं, इसलिए हम मैखाने में नहीं आए। एक भी हूर नहीं, इसको हम जन्नत कहें भी तो कैसे?" वह बड़बड़ाता हुआ क्लब में घुसा। उस समय क्लब की अधगोरी नर्तकियां किसी नृत्य की तैयारी कर रही थीं और उनके साथ का बैण्ड बजना प्रारम्भ हो गया था।

"हलो! बैरिस्टर साहब!" एक तरुण ने आगे बढ़कर हाथ बढ़ाते हुए कहा। बैरिस्टर के घने बालों वाले हाथ ने उस हाथ को थामकर ज़ोर से हिलाया और फिर बैरिस्टर ने एक चटखते झटके से कहा, "मिस्टर मनोहर!"

मनोहर ने दांत बाहर निकाल दिए, जैसे बहुत अधिक प्रसन्न हो गया।

"बहुत दिन बाद नज़र आए भाई, आजकल कहां रहते हो?" बैरिस्टर ने कहा। उसके स्वर में इतनी अधिक सहानुभूति थी कि मनोहर भी एक बार चिन्ता में पड़ गया।

"जहां शक्कर होती है वहीं चींटा रहता है। क्या बताएं। कालेज से निकलकर सड़क के दारोगा बन गए हैं। दो-चार पुराने यार हैं जिनके आसरे अब भी कालेज चले जाते रहते थे, पर अब कमबख्त कालेज भी बन्द हो जाएंगे। फिर हम जहां के तहां। खैर, यह तो रहा महात्मा गांधी वाला हिन्दुस्तान, अब यह बताइए कि पेरिस का क्या हाल है?"

दोनों हंसे।

"आदत तुम्हारी वही रही।"

"सरकार जानते हैं, बंदा अभी गुलाम ही है।" वे फिर हंसे।

वह हास्य सुनकर एक बार सब लोग चौंक उठे। फिर अपनी-अपनी मेजों पर झुके। वे सभ्य लोग अपनी-अपनी सभ्य साथिन में तल्लीन हो

गए। वे सुन्दरियां जवानी के रास्ते को मस्ती के पुल पर खड़ी होकर पार कर जाने के हौसले में थीं। और वह होड़ दिन पर दिन बढ़ती ही जा रही थी। बैरिस्टर मनोहर को लेकर एक मेज़ घेरकर बैठ गया।

बैरा ने टेढ़ी आंख से देखा। कठोर मुद्रा लिए वह वर्दी पहने था। उसे बड़े लोगों के सामने हंसने और मुस्कराने का अधिकार नहीं था; क्योंकि वह तमीज़ के खिलाफ था। इन सभ्य मनुष्यों का वैभव और विलास जितना वह जानता था उतना वे एक-दूसरे के विषय में भी नहीं जानते थे। और फिर बड़े गुलदस्ते की आड़ में होकर वह भीतर चला गया। गाना अंग्रेज़ी गत पर बहता जा रहा था।

मिस फ्लावर ने उचककर देखा। वह एक चौड़ी हड्डियों की जवान स्त्री थी। गोरी थी और अंग्रेज़ी फटाफट बोलती थी। फ्लावर प्रायः यहां सबसे मुस्कराहट का आदान-प्रदान कर लिया करती थी।

ममता ने क्लब में प्रवेश किया। उसका सौन्दर्य उस समय अपनी अभिव्यक्ति करने में ऐसा सन्नद्ध था जैसे कोई पटेबाज़ अखाड़े में आ खड़ा हुआ था। उसने ऐसा ब्लाउज पहना था जिसमें से उसके वक्ष का ऊपरी भाग, कन्धे और पीठ तथा हाथ दिखाई दे रहे थे। साड़ी का पल्ला उसने ऐसे ओढ़ा था कि उसका यौवन दिखाई देता रहे। उसके गोरे शरीर पर चमकते काले ब्लाउज़ पर पीली रेशमी साड़ी का पतला पल्ला ऐसे कन्धे पर होकर पीछे गिर जाता था जैसे चांदनी में सिमटे हुए अन्धकार पर बहती हल्की नदी की धारा पर्वत के दोनों ओर गिर रही थी। ममता के सौन्दर्य-विकास में अमरीकी कला ने पदन्यास किया था, कि अंग-अंग का सौष्ठव अलग-अलग दिखाई देता रहा। उसके बाल रेशम के लच्छों-से उसके कन्धों पर फहरा रहे थे और उसके नेत्रों की कोरों पर खिली काजल की रेखाएं उसके नेत्रों की अनी बनकर निकली हुई थीं। बैरिस्टर बिहारीलाल विभोर-सा देखता रहा। मनोहर ने उसकी दृष्टि का पीछा करके तुरन्त ही उसके ध्यान के केन्द्रबिन्दु को पहचान लिया। उसे आश्चर्य हुआ। वह ममता को कालेज में इतना देख चुका था कि वह यह भी भूल गया था कि वह सुन्दरी है।

"एक ही शमा ने जलकर मैखाने को जन्नत बना दिया।" बैरिस्टर के मुंह से अचानक ही फूट निकला।

"बैरिस्टर साहब, आप तो पेरिस देख चुके हैं।" मनोहर ने व्यंग्य से कहा। उसके दिमाग में पेरिस का अर्थ था – वह स्थान, जहां एक से एक सुन्दर स्त्री प्रायः नग्न दिखाई देती है। किन्तु बिहारीलाल ने अस्वीकृति से सिर हिलाया। मनोहर को इस बार और भी अधिक आश्चर्य हुआ। अब बैरिस्टर बिहारीलाल ने ज़ोर देकर कहा, "पेरिस पानी भर रहा है मिस्टर मनोहर! पेरिस पानी भर रहा है।" हठात् स्वर बदलकर पूछा, "यह कौन है?"

मनोहर चुप रहा और उसने बैरिस्टर के सिगरेट-केस से निकालकर कीमती सिगरेट सुलगाई, फिर धुआं छोड़ा और फिर कहा, "आप इसे नहीं जानते! यह मेरे साथ कालेज में थी। बड़े-बड़े चाहनेवाले थे इसके। मुलाकात करवाऊं?"

मनोहर के स्वर में यह भाव था कि मेरे बाएं हाथ का खेल है।

"बिच्छू का डंक लगवाकर पूछते हो ज़हर उतारूं?"

"तो मेरी फीस!" मनोहर ने मुस्कराकर कहा।

"फीस!" बैरिस्टर चौंका।

"जी हां, डाक्टर मरीज़ को बीमार जानकर भी उससे उस वक्त पैसे निकलवा लेता है न? वकील जब मुवक्किल की जायदाद खतरे में देखता है, तब भी उससे दाम ले लेता है या नहीं? कहिए बैरिस्टर साहब! मैं गलत कह रहा हूं?"

बैरिस्टर कायल हुआ। कहा, "नहीं।"

"मेरा महीने-भर तक यहां का बिल माफ।"

"और कुछ?" बैरिस्टर ने ऐसे कहा जैसे बस? और मनोहर के चेहरे को देखा जिस पर साफ लिखा हुआ था कि सौदा करो, माल लो। बैरिस्टर ने छुरे पर छुरा रखा।

"आदमी तुम शरीफ हो।" मनोहर ने कहा। बैरिस्टर मुस्कराया।

"कब?" धीरे से बैरिस्टर ने कहा।

"अभी।" मनोहर ने कहा, "नौ नकद, न तेरह उधार।"

मनोहर उठा और उसने सिगरेट का धुआं छत की ओर फूंका। बैरिस्टर उठ खड़ा हुआ। मनोहर ने सिगरेट फेंक दी।

"आदाव वजा लाता हूं।" मनोहर ने ममता से झुककर कहा।

"ओह ! मिस्टर मनोहर !" ममता ने तिरछी दृष्टि से देखा।

"चलिए, आपने पहचान तो लिया !" मनोहर हंसा।

"भूल जाने लायक आदतें तो आपने पाई नहीं।"

"मेरी किस्मत !" मनोहर हंसा, ममता भी।

"उसे जानती हो मिस ममता ?" मनोहर ने सिगरेट सुलगाते हुए कहा। यह सिगरेट वह सम्भवतः नहीं भी जलाता, परन्तु अब वह अपने भावों को छिपाना चाहता था। और सिगरेट पीने की अनेक प्रक्रियाओं में यह काम सबसे सहज था।

"किसे ?" ममता ने आंखें फिराकर कहा। वैरिस्टर दूसरी ओर देख रहा था।

"वैरिस्टर विहारीलाल।" मनोहर ने कहा।

"ओह ! जो पेरिस से आया है ?" ममता के स्वर में प्रकट उपेक्षा थी।

"तव तो जानती हो !" मनोहर ने कहा। वह उसकी उपेक्षा से विलकुल भी प्रभावित नहीं हुआ था।

"आओ !" मनोहर ने कहा, "मुलाकात कराऊं ? आदमी सलीके का है।"

दोनों चलकर कुर्सियों पर वैठ गए। मनोहर ने कहा, "वह देखो। वह जा रहा है। मैं वुलाता हूं।" उसने संकेत किया।

वैरिस्टर विहारीलाल घूमता हुआ आया। ममता ऐसे वैठी रही जैसे वह उसे अचानक देखकर विस्मित हो गई थी।

"मिस ममता !" मनोहर ने कहा। वैरिस्टर ने ममता की दृष्टि की प्रतीक्षा की।

"वैरिस्टर विहारीलाल ! और कुछ कहूं ?" मनोहर ने दुहराया।

वैरिस्टर झुका। उसने ममता को आदर दिया। और हाथ हिलाकर मनोहर को चुप करते हुए कहा, "अच्छे शिकारी का तीर अपने-आप निशाने पर टकराता है।"

वे हंसे और उस समय विल्लौर की वड़ी-वड़ी कंदीलों में जलती

रोशनी पर उनकी निगाहें टंग गईं। उस भव्य प्रकाश से छत पर बनी तसवीरें जगमगा रही थीं। उनका वह मोटा और झनझनाता मिला-जुला हास्य, वेबात का होकर भी, उनको एक-दूसरे के समीप ला रहा था।

बैरिस्टर ने झुककर देखा, ममता छत की कंदीलों को देख रही थी।

3

लालटेन के मद्धिम आलोक में कमरे में एक धुंधलका-सा छाया हुआ था। जैसे प्रकाश घुट रहा था, अरमानों की तरह तड़पता हुआ।

रमेश बिस्तर पर पड़ा कुछ सोच रहा था। उसके मस्तिष्क में तरह-तरह के विचार आ रहे थे। कालेज समाप्त हो गया। जिस मरीचिका के पीछे वह इतने दिन दौड़ा था, वह जल नहीं था, एक सुदूर की छलना मात्र थी।

किसी ने बाहर से द्वार खटखटाया। रमेश के ध्यान में व्याघात पड़ा, देखा। वह अपने कल्पना के लोक से फिर उसी कमरे में उतर आया।

"कौन है ?" उसने रूखे स्वर से पूछा।

"खोलो, जल्दी खोलो !" आगंतुक के स्वर में आतुरता थी। रमेश आतंकित हुआ। वह उठा और उसने लालटेन की वत्ती जरा तेज की। बाहर खड़े आदमी ने खांसा।

रमेश ने दरवाजा खोला। एक व्यक्ति भीतर घुस आया और परिचित की भांति आ खड़ा हुआ।

"अरे हरखू ! क्या बात है इतनी रात गए !" रमेश ने अचकचाकर कहा। वह आतुरता से खड़ा ही रहा। उसके नेत्रों पर लालटेन का धीमा प्रकाश चमक उठा। हरखू क्षण-भर देखता रहा। रमेश ने फिर कहा, "क्या बात है ?"

"जरूरी काम था भइया !" हरखू ने बैठते हुए कहा।

"कब चले ?" रमेश ने पूछा।

"शाम को।"

"क्या हुआ ?"

हरखू ने एक बीड़ी निकालकर सुलगाई। धुआं दरवाज़े की तरफ छोड़ा। फिर खांसकर कहा, "रमेश, तुम्हारी मां बीमार है। तुरन्त गांव बुलाया है।"

रमेश एकदम आहत हुआ—मां! वह जिसके विषय में रमेश इधर सोचना भी भूल गया है? बीमार है? तो क्या वह इतनी अस्वस्थ है कि उसे एक आदमी को भेजना पड़ा? और तब रमेश को याद आया—वे अनेक पत्र आए पड़े हैं। वह अभी तक किसी का भी उत्तर नहीं दे सका था। मां! मां को भी उत्तर नहीं दे सका था?

"रात को एक गाड़ी जाती है?" रमेश ने पूछा।

"आखिरी गाड़ी है।"

"चलो हरखू!"

वह बक्स ठीक करने लगा। उसने अपने कपड़ों को रखा और बक्स बन्द करके उठ खड़ा हुआ। दोनों बाहर आ गए। बड़ी लौंग वाली स्त्री किसी कारण से बाहर ही चौक में थी। उसने देखा और कहा, "जा रहे हो?"

रेल के पहिए भाग चले। रमेश अपनी ही चिन्ता में डूबा रहा। उसके सामने बैठा हरखू उसे अनेक बातें सुनाता रहा, पर रमेश ने प्रायः सबको ही सुनकर भी किसी को भी समझा नहीं। दो-चार बार झूठे ही को हंसा भी, जिससे हरखू प्रसन्न हो उठा कि वह पढ़े-लिखे आदमी को भी हंसा सकता था। जब रेल से नीचे उतरे, स्टेशन पर सन्नाटा था।

गाड़ी वाले ने किराया पहले ही तय किया, तब दोनों उसमें बैठ गए। बम्बई का हाहाकार छूट गया। रमेश और हरखू! महाराष्ट्र देश में उत्तर देश के दो व्यक्ति। आज दो पीढ़ी पहले उत्तर के अनेक मज़दूर आकर बसे थे। उन्हीं में से शोभा भी थी। वे मराठी भी बोलते, हिन्दी भी। उनका दारिद्रय उनमें भेद खड़े करने में असमर्थ था।

दिन निकला। बम्बई की तर हवा की नमी झोंकों पर खेलने लगी।

धरती का नीलापन दूर-दूर तक छाई हरियाली से ढंका हुआ था। नीली पर्वतमालाएं भीगी-भीगी-सी दिखाई देती थीं। ग्रामीण कुओं से पानी भरने को आ रहे थे। कोई बैल हांके लाता था, कोई नंगे बदन चला जाता था। एक ही दुनिया के कितने पहलू हैं। अभी तक ज़िन्दगी एक बेतहाशा दौड़ थी, अब सब इतना धीमा है कि उस पर खीझ-सी हो उठती है। और रमेश के पास हरखू बैठा है जिसका संसार इसी में सीमित है कि वह अपने-अपने परिवार की परिधियों में समाप्त हो जाए। यह सब वनस्पति जीवन है, रमेश को कभी भी पसन्द नहीं आता।

गाड़ी रुक गई। उतरते समय रमेश को लगा, उसके सिर पर एक बहुत बड़ा बोझ उतर आया था। वह इसी दुनिया में पला है लेकिन बौद्धिक रूप से वह इस सबसे बहुत दूर हो गया है।

एक छोटे-से कोठे में मां बिस्तर पर पड़ी खांस रही थी। कंकालमात्र अवशेष है। आंखें गड्ढों में धंस गई हैं। सांस लेती है तो गला खरखराता है। और अब सिमटकर बिस्तर के मैलेपन पर ऐसे पड़ी है जैसे घूरे पर हाल का डाला हुआ कूड़ा। रमेश का मन घुमड़ने लगा।

"मां ! क्या हुआ तुम्हें मां !" उसने आर्त कण्ठ से पूछा। अपनेपन की कील हृदय में बड़ी गहरी होती है, वह कभी उखड़ नहीं पाती। और फिर मां !

"बेटा ! आ गया रे, बेटा कितने दिन बाद !" स्वर रुंध गया। फिर उसका सिर हाथों में लेकर कहा, "ऐसा तुझे क्या मोह है जो शहर जाकर तू मुझे भूल जाया करता है ?" यह एक उलाहना है अवश्य, परन्तु स्नेह के प्रवाह से सिक्त।

"कुछ नहीं अम्मां ! पढ़ाई खत्म हो गई है, कुछ काम-धन्धा लगाने की सोचता था।" रमेश ने कहा और कहते-कहते झेंप गया। पीछे पग-ध्वनि सुनाई दी।

"शोभा ! देख तो रमेश आया है," मां ने कहा, "ज़रा पानी तो ले आ ज़रा। मेरा गला सूख रहा है···ले आ बेटी···"

शोभा गिलास में पानी भरकर लाई। उसके नेत्रों में आनन्द छलक रहा था जैसे बेल फिर लहलहा उठी। रमेश ने देखा। शोभा ने जल्दी से

घूंघट खींचा, पानी छलककर रमेश पर गिरा। वह चौंका। शोभा लाज से गड़ गई।

मां हंसी। कहा, "अरी ! इतनी लाज का क्या होगा ?" फिर मुंह फेरकर रमेश से कहा, "बेटा रमेश !इसी से तो तेरे बाप ने बचपन में तेरी सगाई की थी। इसकी भी मां मर गई। बेचारी मेरे सुपुर्द कर गई है इसे। तब से तेरी ही आस लगाए बैठी है।"

शोभा लाज से झुक गई। उसके हाथ बंध गए और उंगलियां आपस में खेलने लगीं। और तभी उसने सुना रमेश कह रहा था, "बहुत दिन बाद देखा है इसे। मैं तो पहचान भी नहीं सका।"

मां ने खांसा। रमेश प्रतीक्षा करता रहा। खांसकर मां ने एक लम्बी सांस ली, बात पूरी करके कहा, "बेचारी ने मुझे बड़ा सहारा दिया है। मेरी बीमारी में मेरे पास और था ही कौन ? एक तू जो है। तूने तो एक भी चिट्ठी का जवाब नहीं दिया !"

वह भयंकरता से खांसने लगी। उसका स्वर फेफड़ों में फड़फड़ाकर हुमकने लगा।

"आराम करो मां, आराम करो।" रमेश ने कहा। वह आकस्मिक दौरे से घबरा गया था। उसे इस वाक्य के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं सूझा।

"आराम ! कहां है मुझे आराम बेटा ? इस जीवन में तो मैंने कभी पाया नहीं। शोभा अकेली थी। गांव में बुरे लोगों से डरकर मैं उसे यहीं ले आई हूं। बेचारी बड़ी अच्छी लड़की है। चौथा दरजा पढ़ चुकी है। जिस दिन तू उससे ब्याह करके मेरा बोझ हल्का करेगा, उसी दिन मैं आराम कर सकूंगी। बेटा ! इसका सहारा कहीं नहीं है···"

"आराम करो मां ! मैं दवा लेकर आता हूं। घबराना नहीं। अच्छा, मैं दवा लेने जाता हूं। अभी आता हूं।"

वह उठकर उत्तर दिए बिना बाहर आ गया। जीवन का एक क्षण ऐसा भी आ सकता है, जहां मानवीय न्याय इतनी निर्ममता से मनुष्य का हृदय सत्य की कसौटी पर रखता है। रमेश नहीं समझ सका। बाहर शोभा खड़ी थी। उसके मुंह पर घूंघट नहीं था।

रमेश को देखकर वह मुस्कराई। सिर झुका लिया।

रमेश उसे सूनी आंखों से देखता रहा। उसकी आंखों की ओर न देखकर लाज से माथे पर आधा घूंघट खींचकर पांव के अंगूठे से ज़मीन कुरेदती वह खड़ी रही।

"कब से बीमार हैं ?" रमेश ने पूछा।

"कई दिन से।" धीमे से शोभा ने उत्तर दिया।

"दवा दी थी ?" रमेश ने रूखे स्वर से पूछा।

"वैद्यजी कहते हैं, मेरे बस का रोग नहीं है। डाक्टर को बुलवाओ।"

"बुलवाया था ?"

"हरखू भैया गए थे। वह पैसे बहुत मांगता था। कहता था—डेढ़ सौ रुपये की सुइयां लगेंगी।"

"डेढ़ सौ रुपये ?" रमेश का स्वर अचकचा गया। यथार्थ की ठोकर स्वप्नों में खोए तरुण हृदय को लहूलुहान कर देती है। डेढ़ सौ रुपये ! कितनी कठोर वास्तविकता है कि जीने को भी पैसा चाहिए। सोचता हुआ वह बाहर के आंगन में आ गया। हरखू द्वार पर दिखाई दिया। उसने धीमे से कहा, "हरखू !"

"भैया !"

मां की खांसी सुनाई दी। रमेश क्षण-भर चुपचाप सुनता रहा। फिर उसने आवेग से कहा, "मैं डाक्टर के पास जाता हूं।"

"जाते तो हो, लेकिन जानते हो, वह डेढ़ सौ रुपये मांगता है ?" हरखू ने कहा।

"मेरे पास बीस रुपये हैं।" रमेश ने खिसियाकर कहा।

"एक बात कहूं ?" हरखू ने भेद-भरे स्वर से पूछा और फिर भीतर की ओर देखा।

"क्या ?" रमेश ने पूछा।

'शोभा से न कहना।" हरखू ने धीमे से कहा, "बात कुछ ऐसी ही है।"

"कहो !" रमेश ने भारी स्वर से कहा।

हरखू के हाथ पर सोने का ऐरन दिखाई दिया। काफी भारी चीज़ थी। हरखू ने फिर कहा, "शोभा ने दिया है। जब से घर छोड़कर आई

है, उसने इसी घर को अपना मान लिया है। उसका घर तो बोहरे ने दबा लिया है, पर यह था उसके पास। मुझे उसने बेचने को दिया है। करीब सत्तर रुपये का होगा। बेच दो।" उसने हाथ बढ़ा दिया।

"लेकिन यह तो शोभा का है ?" रमेश ने कहा। उस समय उसके स्वर में परायापन था।

खंभे की आड़ में कोई हिला। हरखू ने देखा, कोई नहीं था। शायद उसे भ्रम हो गया था। हरखू ने गहना रमेश के हाथ पर धर दिया।

"तो क्या हुआ ?" हरखू ने आश्चर्य से पूछा।

"उसकी चीज़ लेना क्या ठीक होगा ?" रमेश ने पूछा।

शोभा के हृदय पर पत्थर टूटा। वह ठिठक गई। तो क्या वह जो सुन रही है वह सब सच है ? मां फिर खांसने लगी। वह क्षण-भर खड़ी रही। फिर जैसे खांसी के अंकुश ने लाज के हाथी को चलाया। शोभा ने बाहर आकर कहा, "जल्दी बुला लाओ।"

रमेश ने देखा और चला गया। वह कुछ भी जवाब न दे सका।

4

डिस्पसरी में दवाओं की तीखी गंध थी। डाक्टर एक मोटा गुजराती था। एक समय वह इलाहाबाद में रहा था। उस अनुभव के आधार पर उसने देहात में दवाखाना खोला था और सचमुच पक्का घर बनवा लिया था। उसके फूले गाल चिकने थे। मीठी बात करता था। इस समय वह खड़ा हुआ था। सामने एक रईस कुत्ता लिए बैठा था। कुत्ता बालों से ढंका हुआ था और कुछ ऊंघ रहा था। रईस के चेहरे पर ऐंठ थी। वह मराठा था। उसने सुपारी के व्यापार में पैसा कमाया था।

"ठहरो भाई ठहरो। डाक्टर साहब मरीज़ देख रहे हैं।" नौकर ने रमेश को द्वार पर रोका।

"मुझे जरूरी काम है।" रमेश ने उसे घूरकर कहा।

"ठहर जाओ। अभी बुला लेंगे।" नौकर ने उसे बेंच पर बैठने का इशारा करते हुए कहा और द्वार पर बैठ गया।

"तो फिर सरकार, दवा शुरू कर दूं?" डाक्टर की आवाज सुनाई दी।

"इसकी मां को मैंने मसूरी में एक अंग्रेज से खरीदा था डाक्टर साहब। अब देखिए, बेचारे की क्या हालत हो गई है। मैंने तो सरकार को एक जानवरों का अस्पताल बनवाने की सख्त जरूरत पर राय दी है..."

"बहुत दुबला हो गया है।" डाक्टर का करुण स्वर सुनाई दिया।

रमेश से रहा नहीं गया। वह नौकर को धक्का देकर भीतर घुस गया। उस समय उस पर आवेश छा रहा था। उसके इस प्रकार घुसने से दोनों एकबारगी सकपका गए।

"कहिए! मैं इस वक्त काम में लगा हूं।" डाक्टर ने भौंह चढ़ाकर कहा।

"साहब...!" डाक्टर ने कहना चाहा, परन्तु रमेश ने काटकर आतुर कण्ठ से कहा, "डाक्टर साहब, मेरी मां मर रही है, जल्दी चलिए..."

"बाहर इंतजार कीजिए।" डाक्टर का कठोर स्वर सुनाई दिया।

"डाक्टर साहब..." रमेश का स्वर गले में रुंध गया।

"तो सरकार, फिर ऐसा कीजिए कि आप टौमी को इंजेक्शन लगवा दीजिए..." डाक्टर अपनी बात को पूरा करने में लग गया।

"डाक्टर साहब!" रमेश ने फिर याचना की।

"क्या है भाई! तुम तो जान को आ गए।" डाक्टर घबरा गया।

"आपने बताया था डेढ़ सौ के इंजेक्शन लगेंगे। मेरे पास सिर्फ यह नब्बे रुपये हैं...शोभा ने कहा था..." रमेश की आंखें फैल गईं।

डाक्टर हंसा। अबकी बार उसके हास्य में भयानकता थी।

"और बाकी साठ कहां से आएंगे?" डाक्टर ने पूछा। उसकी गोल आंखों ने दो झपके खाए और उसने कहा, "यह क्या खैराती अस्पताल है? मरीज की हालत बहुत खराब है, मैं उसे देख चुका हूं..." डाक्टर ने गंभीर होते हुए कहा, "मैं उसे देख चुका हूं..."

"डाक्टर साहब ! मेरी मां मर जाएगी···" रमेश ने फिर विवशता से कहा।

"तो तुम एक काम करो। एक दवा ले जाओ।" डाक्टर ने एक दवा निकालकर दिखाते हुए कहा, "लो ! शायद यह असर करे। लेकिन इसकी कीमत सैंतालीस रुपये है। पहले यह दे दो।"

"सैंतालीस !" रमेश ने अचकचाकर कहा।

डाक्टर ने हंसकर ज़मींदार से कहा, "सरकार, पहले यह बारह रुपये की आती थी पर अब ब्लैक की वजह से चौगुने दाम हो गए हैं। मैंने तो बावन की ली थी। लड़ाई का दौर है···" वह हंसता रहा।

रमेश ने हाथ बढ़ा दिया। उसे स्वयं यह अनुभव नहीं हुआ कि कब उसने रुपये दिए और कब उससे दवा ली।

वह तेज़ी से घर चला। उसके मस्तिष्क में केवल मां थी। मां ! मां !

मां इस समय भयानकता से खांस रही थी। शोभा ने उसे पकड़ रखा था।

रमेश ने तेज़ी से प्रवेश करते हुए कहा, "मां !" वह भीतर भागा। खाट के पास बैठकर कहा, "मां ! मां ! मैं दवा तो ले आया हूं···"

"बेटा···बेटा···शोभा का ध्यान···" मां ने कहने का अस्फुट-सा प्रयत्न किया। फिर वही खांसी और फिर वह खांसती चली गई, दुर्दमनीय घूंसों से जैसे फेफड़ा फट रहा था, फिर सिर एक ओर को लुढ़क गया।

शोभा ज़ोर से चिल्लाकर रो उठी। रमेश कुछ देर सूनी आंखों से देखता रहा। फिर उसने कहा, "मां ! मैं तेरे लिए दवा लाया हूं मां !" किन्तु मां ने कुछ नहीं कहा। वह फटी आंखें अब कुछ भी देख नहीं सकती थीं।

हरखू द्वार पर खड़ा हुआ दिखाई दिया। उसकी आंखों से दो बूंद आंसू गिरे और फिर उसने उन्हें पोंछ लिया।

"भैया !" शोभा चिल्ला उठी। रमेश ने मुड़कर देखा और गंभीर स्वर से धीरे से कहा, "मां सो गई है हरखू !" और फिर जैसे वह उबलने

लगा। उसने रुंधे हुए स्वर से कहा, "जिन्दगी-भर इसे एक भी दिन आराम नहीं मिला। जब तक जीवित रही इसके लहू की एक-एक बूंद मेरे लिए अपने-आपको मिटाती रही। लेकिन आज तो वह स्वयं ही नहीं रही। देखते हो ? मेरे हाथ में क्या है ? गरीबों का खून। मैं समझा था यह खून मेरी मां को जिन्दगी दे सकेगा, लेकिन वह नहीं रुक सकी। जिस वक्त मां मर रही थी, मसीहा धनवान के कुत्ते का इलाज कर रहा था। मां···तेरा ···तेरा यह अभागा बेटा तेरे लिए कुछ भी नहीं कर सका···मां····" वह रुक गया। अब एकाएक उसका गला रुंध गया।

चिता जली। रमेश की आंखों से दो बूंद आंसू गिरे। हरखू ने उसका हाथ पकड़कर कहा, "चलो भइया ! यह समय भी एक दिन सबको ही देखना पड़ता है।"

रमेश लौट चला। सचमुच यह दिन सबके जीवन में एक दिन आता है, जब मां-बाप चले जाते हैं। परन्तु मरघट से लौटना कितना भयानक काम होता है, कितनी थकान होती है उसमें।

घर में शोभा बिस्तर पर पड़ी रो रही थी। रमेश की पग-ध्वनि सुनकर उसने सिर उठाकर देखा। रमेश क्षणभर देखता रहा। शोभा व्याकुल-सी उसे देख रही थी। रमेश के सिर पर का बोझा उसे जैसे दबाने लगा। उसने अत्यन्त करुण स्वर से शोभा को देखकर कहा, "एक ओर बुझते हुए जीवन की निस्तब्धता और दूसरी ओर जीवन की लपट का चिल्लाता हुआ सूनापन···"

वह उठी। उसके नेत्रों में उत्सुकता थी। रमेश रुक गया।

"क्या कह रहे हो ?" उसने पूछा।

"तुम नहीं समझोगी शोभा ! शहर जाना है। सामान बांध दो।" उसने एकाएक मुड़कर कहा। शोभा देखती रही। परिचय की प्रारम्भ की अवस्था मृत्यु ने बहुत दूर फेंक दी थी। पास ही रमेश सिगरेट जलाकर बैठ गया। शोभा सामान बांधने लगी। पहले रमेश का बक्स ठीक कर दिया, फिर अपना बांधने लगी। फिर कहा, "तैयार है सब।"

"अरे यह क्या ? तुमने अपना भी सामान बांध लिया ? मैंने तो अपना बांधने को कहा था !" रमेश की बात सुनकर शोभा ठिठक गई। अपनापन

टूट गया।

"क्यों ? मैं नहीं चलूंगी ?" उसने दृढ़ता से पूछा।

"तुम कहां चलोगी ?" उसने आश्चर्य से पूछा।

"तुम क्यों कहते हो···तू कहो न···" शोभा ने मुस्कराकर कहा।

"तू···" रमेश ने कहा, जीभ तालू से सट गई। शोभा एक बात में ही सब कुछ कह गई। पर रमेश कैसे मान ले! "तुम कहां चलोगी ?" उसने पूछा।

"जहां तुम जाओगे। मेरा और कौन ठिकाना है!" स्त्री इससे अधिक क्या कह सकती थी ?

"लेकिन मेरा ही अभी कौन ठिकाना है! मेरे पास पैसा नहीं, आराम नहीं।"

"ठिकाना क्या ज़िन्दगी-भर नहीं लगेगा ? तुमसे बढ़कर मुझे और क्या आराम है···" शोभा ने लाज से मुस्कराकर माथे पर घूंघट खींच लिया और कहा, "मां कहती थी···"

"मैं नहीं जानता शोभा! मेरी बरबादी किसी की आबादी है, या मेरी अपनी आबादी एक सपना है, लेकिन राह पर खड़ा होकर मंज़िल को पुकारूंगा नहीं। मुझे ही उस तक पहुंचना होगा।" रमेश की बात शोभा नहीं समझी। पर इतना वह समझ गई कि मुझे स्वीकार नहीं किया गया है, मैं पराई हूं। शोभा चौंकी। कैसे कहे कि मेरा भार संभालो। मैं तुम्हारी हूं। तुम्हारी ही आस में रही हूं। भय ने ज़ोर से पुछवाया, "तो मुझे अकेली छोड़ जाओगे ?" रमेश का मौन उसे और भी अधिक डराने लगा। "तुम मुझे छोड़कर न जाओ!" उसने कहा। फिर लाज को फटकारकर आंचल पसारकर याचना की, "तुम्हारे सिवा मेरा कोई नहीं है दुनिया में।" समर्पण ने सिर धरती पर टेक देने को विवश कर दिया, "जैसे तुम चाहोगे मैं वैसे ही रहूंगी।" और आत्मसम्मान ने एक बार रमेश को आश्वासन दिया, "मुझे धन नहीं चाहिए, मुझे कुछ नहीं चाहिए। मैं तुम्हें चाहती हूं, मेरे देवता···"

वह रो उठी। वह व्याकुल-सी आंसू बहाने लगी।

"आंसू मुझे डुबा सकते हैं, बांध नहीं सकते। मुझसे मत कहो कि प्यार

का बदला मैंने नहीं दिया। समुद्र किसी की प्यास नहीं बुझाता, फिर भी दिन-रात घायल-सा पुकारता रहता है···" रमेश ने कठोर स्वर से कहा।

वह बक्स उठाकर चलने लगा।

"जाओ।" हठात् शोभा ने सिर उठाकर कहा, जैसे इससे अधिक अपने लिए कहना उसके लिए असम्भव था, "जिसमें तुम्हें सुख मिले वही करो; क्योंकि तुम्हारे जीवन का सुख ही मेरा सुख है; लेकिन मुझे विश्वास है कि तुम आओगे। इसलिए मैं तुम्हें हंसकर बिदा करूंगी···"

वह रोई, फिर हंसी, फिर हंसते-हंसते रो उठी। रमेश चला गया। शोभा ने उसकी पगधूलि पर सिर रख दिया। आंसू टपका। फिर उसने सिर उठाकर देखा—रमेश चला जा रहा था···शोभा देखती रही। और देखती रही। कब सांझ आई, कब रात, वह जान नहीं सकी। केवल एक बार किसी गड़रिये का स्वर सुनाई दिया, "मैं प्रतीक्षा करती रहूंगी, मृत्यु तक राह देखती रहूंगी। मैं तुझे कभी नहीं भूलूंगी···"

चरवाहे का गीत और भी गूंजा, पर शोभा उसे भी उतना ही सुन सकी।

5

"और चीनी" अरुणा की आंखों को घूरते हुए ममता ने कहा। ममता की आंखों में छल था, उत्सुकता थी। वह आज इसीलिए उसे अपने घर ले आई थी कि सारी बातें उससे पूछ ले। चीनी डालकर चम्मच से उसे चाय में घोलती रही।

अरुणा ने "बैरिस्टर आदमी मुझे जंचता नहीं।" चाय पीते हुए कहा।

"क्यों? प्रोफेसर अच्छा है?" ममता ने फिर कुरेदा।

"प्रोफेसर? प्रोफेसर एक किताब है, बोलता नहीं।" वह कह गई, पर

लाज ने घेरा डाला।

"जो बोलता नहीं उसे पढ़ने में बड़ा मज़ा आता है।" ममता ने फिर चुभाया।

"यह तो तू ही जाने।" अरुणा ने टाला। चाय पीकर रख दी।

"तो फिर तय ही समझूं ? क्यों जानती है ? तेरे होने वाले पति ने मेरे बारे में क्या कहा है ?"

"क्या तो ?" अरुणा ने उत्सुकता से कहा।

"कहता था रमेश सीधा-सादा गरीब लड़का है, उसे मैंने शिकारी की तरह जाल में फांस लिया है।" ममता हंसी—"और तेरा व्याह हो रहा है···" वह फिर हंसी।

"नमस्ते ! देवियो ! नमस्ते !" एकाएक द्वार पर मनोहर दिखाई दिया। वह आकर बैठ गया। कहता गया, "ओह हो ! चाय ! वाह ! चाय भी क्या चीज़ है। एक बार महाराजा अलवर के साथ पी थी, दूसरी बार गवर्नर मॉरिस के यहां, मगर चाय का लुत्फ तब आता है जब पिलानेवाला दिल से पिलाए···"

"और हाथों का भी इस्तेमाल न करे।" ममता ने कहा।

अरुणा मनोहर को आवारा समझती थी। प्रोफेसर उससे घबराकर उसे प्रसन्न रखता था। गुंडों को मित्र बनाए रखना उसे एक बुद्धिमत्ता का काम लगता था। अरुणा उससे डरती थी, पर साफ बिगाड़ भी नहीं करना चाहती थी।

"अच्छा तो मैं चलूं ?" उसने उठकर कहा।

"क्यों ?" ममता ने पूछा।

"बैठिए भी।" मनोहर ने कहा, "इतनी जल्दी क्या है ?"

"जी ? ?" अरुणा ने तिनककर कहा। और फिर वह ममता को हाथ जोड़कर आंख से इशारा करके चली गई। मनोहर देखता रहा।

"नाराज़ हो गई ? ऐसा ही सिड़ी वह रमेश भी था।" उसने गहरी नज़र से देखा और मुस्कराया।

टालती हुई दृष्टि से ममता ने पूछा, "तुम भी किसी की नाराज़ी और खुशी की परवाह करते थे ?"

"मैं शाम के लिए क्लब में बुलाने आया था। बैरिस्टर ने पार्टी दी है।" मनोहर ने उसकी बात का कोई उत्तर नहीं दिया।

"मैं आऊंगी।" उसने संक्षिप्त उत्तर दिया।

"थैंक्यू !" मनोहर ने कहा, "मुझे यही उम्मीद थी। ममता देवी, जिन्दगी वैसे तो वह है जो गौतम बुद्ध फरमाया करते थे। अगर वह पसन्द नहीं है तो हमारी-आपकी स्टैंडर्ड है।" ममता हंस दी।

मनोहर चला गया। उसके जाने पर ममता को अरुणा का ध्यान आ गया। प्रोफेसर ! अरुणा भी है तेईस की। बारह एक साल का फर्क है ! ठीक है। निभ तो जाएगी ही। अरुणा में है भी क्या ! ममता सोचती रही—मेरी तरह वह आजाद है, न उसे अपने ऊपर इतना विश्वास ही है। ममता उठकर मेज़ के पास चली गई। कुछ देर अखबार देखती रही, फिर जी उचाट खा गया।

हठात् रमेश ने प्रवेश किया। वह बैठ गया। वह बहुत ही उदास था। उसकी आंखों में चमक बुझी-बुझी-सी थी। उसके गालों पर स्याही उभर आई थी जैसे उसने शेव नहीं किया है। और वह बहुत ही मूक है, जैसे आंधी को बांधकर पटक दिया गया है। ममता ने आश्चर्य से पूछा, "क्या बात है रमेश ?"

"मां नहीं रही।" उसने केवल इतना ही कहा। ममता ने सुना। बोली कुछ नहीं, जैसे सहानुभूति को उसके पास कुछ नहीं था।

वह कुछ देर वैसे ही बैठा रहा। आया भीतर दिखाई दी, फिर वह चली गई। ममता फिर भी नहीं बोली। रमेश निःशब्द बैठा रहा। वह कितनी आशाएं लेकर आया था। उन सब पर पानी फिर गया। ममता ने हाथ बढ़ाकर मेज से पेंसिल उठा ली और अखबार पर फूल बनाया और काट दिया। हठात् रमेश ने सन्नद्ध स्वर में धीरे से कहा, "ज़िन्दगी की एक रात खत्म हो गई। अब चौराहे पर आकर पूछता हूं, किधर जाऊं?"

"कहां तक जा सकते हो ?" ममता ने पूछा। उसने निगाह नहीं मिलाई।

"कोई हद नहीं बांध सकता। मुझे अब सारी दुनिया अपने कदमों के

लिए छोटी दिखाई दे रही है। लेकिन मैं अकेला चल नहीं सकता। मैं चाहता हूं कोई अपनी मुस्कराहट से तूफानों में मेरी हिम्मत बंधाता रहे। ममता ! तुम मेरे साथ चलोगी ?" उसने सिर उठाया।

"चलूंगी।" ममता ने उत्तर दिया। रमेश मुस्कराया। उसे विश्वास नहीं हुआ। तभी ममता ने फिर पूछा, "लेकिन तुम्हारे सिर पर कहीं छत है ? तुम्हारा कहीं ठिकाना भी है ? याद रखो समुद्र के तैरने के लिए जहाज़ चाहिए।" वह रुक गई।

"क्या मतलब ?" रमेश ने चौंककर पूछा।

"बता सकते हो मैं कहां रहूंगी ?" ममता ने व्यंग्य से कहा। उसने उसे घूरा।

रमेश का सिर झुक गया। वह सोचने लगा। फिर उसने निश्चय से सिर उठाकर पूछा, "और जिस दिन छत हो जाएगी ?" वह एक चुनौती थी।

"उस दिन मैं आ जाऊंगी।" ममता ने कहा।

"वादा करती हो ? जिस दिन मैं तुम्हारे द्वार पर आऊंगा उस दिन तुम मुझे प्रतीक्षा करती हुई मिलोगी ?" रमेश ने फिर दुहराया।

"करती हूं।" ममता ने सिर हिलाकर कहा। रमेश कुछ देर उसके नेत्रों को घूरकर देखता रहा। फिर उठा और एकदम चला गया। उसके जाने के बाद कमरे में एक सूनापन-सा छा गया। ममता ने देखा। और रमेश के शब्द उसके कानों में बारम्बार गूंज उठे। वह प्रतिज्ञाबद्ध है। ममता ठठाकर हंसी। उसका हास्य वास्तव में एक पागलपन से सराबोर था कि सुनकर आया भीतर चौंकी। वह अभी-अभी इनकी बातें पर्दे के पीछे से सुन चुकी है। और यह हास्य ! यह तो उसे स्त्री का स्वभाव नहीं दिखाई देता। क्या यह वही ममता है जिसे उसने बचपन से पाला है ?

"बीबीजी !" उसने टोका।

"क्या है ?" ममता ने आश्चर्य से देखा।

"मैंने आपको बचपन से पाला है और बेटी की तरह मानती हूं। मैं समझती थी कि आप एक···एक अच्छी ज़िन्दगी बिताएंगी पर जिस रास्ते आप चल रही हैं, वह घर-गृहस्थी का-सा तो नहीं है। मैं यह नहीं देख

सकती।" बूढ़ी का हृदय जैसे आवेश में आ गया था। बहुत दिनों से जो कुछ कहना चाहती थी, वह आज फूट निकला।

"नौकर हो, नौकर की तरह रहो, समझीं? झाड़ू की जगह झाड़ू, और जूते की जगह जूता? खबरदार, जो आइन्दा ऐसी बात की···।" ममता क्रोध से चिल्ला उठी।

आया सकपका गई। उसने ममता का यह रूप नहीं देखा था। पर उसका अपना स्वाभिमान था। कहा, "तो मैं तो बीबीजी, अब छुट्टी चाहती हूं···" सोचा शायद डर जाए।

"हां, जा सकती हो···" ममता ने उसी कठोरता से कहा, "अब चाहो भी तो नहीं रखी जाओगी।"

आया चली गई। ममता कुछ देर क्रोध से देखती रही कि वह नौकरानी बुढ़ापे के बावजूद चली गई। अपनों का पतन देखने से तो कुछ लोगों को मर जाना ज्यादा अच्छा लगता है। फिर ममता भीतर जाकर शृंगार करने लगी। आज मन उचाट था। आंखों में काजल अधिक लग गया। होंठों पर ललाई भी ज़्यादा चढ़ गई। फिर दोनों को पोंछा, फिर रंग किया। यों ही सूरज डूब गया। बादलों की दलदल में धंसा और कुछ देर छटपटाया, फिर सांस लेने की प्राणपण चेष्टा में गर्क हो गया।

किन्तु क्लब में ममता बैरिस्टर के साथ होते ही फिर प्रसन्न हो उठी और गत वैषम्य को बिलकुल भूल गई।

नाच हो रहा था। अब जैज़ बज रहा है। अधनंगी लड़कियां अपने कूल्हे नचा रही हैं और स्त्रियां अपने प्रेमियों के साथ बैठी हैं।

बैरिस्टर ने उसका हाथ पकड़कर इशारा किया।

भीतर के कमरे में पहुंचकर उसने कहा, "इजाज़त है?"

उसके हाथ में एक कीमती हार था।

ममता मुस्कराई। बैरिस्टर ने हार पहना दिया। और फिर वह विभोर दिखाई दिया। उसने कहा, "जब से मैंने आपको देखा है···"

"आप घायल हो गए हैं···" ममता ने मुस्कराकर कहा।

"ममता! तुम्हारे पास···" ममता ने निगाह उठाकर देखा।

वैरिस्टर के शब्द उसके पास से चुक गए। उसने ममता के कंधे पकड़ लिए। वह मुस्कराई। फिर दोनों कुछ देर कुछ नहीं बोले। एक-दूसरे को घूरते रहे।

"आज मैं तुम्हें पाकर कितना खुश हूं···" वैरिस्टर ने कहा। ममता हटकर सोफा पर बैठ गई।

ठीक उसी समय प्रोफेसर होल्कर ने झुककर कहा, "नहीं रमेश! नहीं।"

रमेश चौंका। वह प्रोफेसर के घर उससे राय लेने आया था।

"तुम ममता को नहीं पा सकते। तुम सरासर गलती किए जा रहे हो। पढ़े-लिखे आदमी हो, समझने की कोशिश करो। वह जानते हो, तुमसे कितनी सीढ़ियां ऊपर है?"

"प्रोफेसर साहब! वह सब दौलत की सीढ़ियां हैं। मैं उन सब पर चढ़ सकता हूं।"

"जो स्त्री धन की इतनी प्यासी हो, वह क्या तुमसे कभी प्रेम कर सकती है?" प्रोफेसर ने आश्चर्य से कहा।

"आप मेरी कुछ मदद कर सकते हैं?" रमेश ने बात काटकर पूछा।

"क्या मदद कर सकता हूं? कुछ नहीं, मेरे दोस्त! एक बात कहता हूं, और वह यह कि तुम असल में दौलत को चाहते हो, ममता को नहीं। तुम्हारी आंखों को इस समाज में फैले हुए कोढ़—धन की गलाज़त ने अंधा कर दिया है। ममता में तुमने ऐसा क्या देखा है?" प्रोफेसर समझा कि अब की बार रमेश उत्तर नहीं दे सकेगा।

"मैं नहीं जानता।" रमेश ने कहा। केवल दृढ़ निश्चय ही उसके नेत्रों में दिखाई दिया। प्रोफेसर का भाव बदला कि मरता है तो मरने दो। अपना क्या जाता है?

"बधाई तो मैं तुम्हें तभी दे सकता हूं जब तुम कुछ बन जाओ। फिलहाल तो मैं तुम्हें कल के लिए निमन्त्रण देता हूं।" प्रोफेसर ने कहा।

"निमन्त्रण!" रमेश ने पूछा।

"कल मेरी शादी है, अरुणा से।" प्रोफेसर ने मुस्कराकर कहा।

"मुबारक ! प्रोफेसर साहब, मुबारक ! कल ज़रूर आऊंगा।" रमेश ने उठते हुए कहा।

6

शादी की पार्टी में जिस समय रमेश पहुंचा, वह मन में सकपका गया। बिजली की दमकती चौंधियाती रोशनी में उसे अपना व्यक्तित्व बहुत ही छोटा दिखाई दिया। जितने लोग थे, स्त्री-पुरुष, वे सब सुन्दर वस्त्र पहने हुए थे। उनका मुख जिस दर्प को सहजात बनाकर धारे हुए था, वह रमेश से बहुत दूर की वस्तु थी। सामने पारसी लड़कियां थीं, जिनको देखकर अंग्रेज़ियत की लाश सड़ती हुई दिखाई देती थी। और व्यापारी भी वहां थे, जो अफसरों से तनिक अलग थे। व्यापारियों को दर्द था कि वे अफसरों की ईमानदारी को दूकानों के सौदे की तरह खरीदकर बेच लेते हैं, और अफसरों को उस कुलटा का-सा गर्व था जो अन्त तक पतिव्रता कहलाती है। उस सभा में रमेश को ऊपरी चमक-दमक देखकर ऐसा लगा जैसे सब चीज़ें इस दुनिया में हैं तो, पर तुलसीदास कह ही गए हैं कि कर्महीन नर को नहीं मिलतीं, वह एक कठोर सत्य है। अपनी दरिद्रता को छिपाने के पच्चीस मनगढ़न्त बहाने हो सकते हैं, पर यह हीरों की तरह तराशी हुई लड़कियों की झंकारती हंसियां, यह गानों की झूमती मस्ती, यह पानों की खुशबू, यह मिठाइयों की गमगमाहट, यदि यही सब जीवन नहीं है, तो है ही क्या ?

"हलो रमेश !" मनोहर ने कहा—"तुम भी आए हो ?"

"मैं भी खलीफा का शागिर्द ही हूं।"

"शाबास !" मनोहर ने उससे हाथ मिलाकर उसे बिठाते हुए कहा, "बैठो।"

रमेश बैठ गया। बगल की मेज़ पर बैठा मारवाड़ी अपने साथी को

लड़ाई की महंगाई के फायदे समझा रहा था। रमेश का जी उधर नहीं लगा। वह ममता को ढूंढ़ने लगा। देखा तो नेत्र जमे रह गए। किंतु ममता ने उसकी ओर एक बार भी नहीं देखा। वह हंस-हंसकर बातें कर रही थी। एक बार मनोहर भी उससे बात कर आया और रमेश फिर भी नहीं जा सका। घूमते हुए मनोहर पास आया तो रमेश की इच्छा हुई, रोककर पूछे…ममता किसके पास बैठी है। पर संकोच ने जीभ को भीतर ही मरोड़ दिया। शायद वह व्यक्ति वैसे ही बैठ गया हो। पर मनोहर कोई सहज व्यक्ति तो नहीं जिससे पूछ लिया जाए।

रिकार्डों का बजना बन्द हो गया। वे सब एक-दूसरे को धन्यवाद देने लगे थे। रमेश बार-बार छिपी नज़रों से ममता को देख लेता। आज वह उसे ऐसी अपरूप सुन्दरी दिखाई दे रही थी कि सारी स्त्रियां उसे उसके सामने फीकी दिखाई दीं।

रमेश ने देखा—होल्कर और अरुणा आज बहुत प्रसन्न थे। उस आनन्द को देखकर उसका अपना अभाव उसके हृदय पर सौ-सौ डंक मारने लगा।

बैरिस्टर बिहारीलाल के एक तरफ ममता और दूसरी ओर कोई और रंगी हुई औरत बैठी थी। रमेश को लज्जा हुई। सच ही है। आज यदि ममता उसकी बगल में आ बैठे तो क्या रमेश इस योग्य है कि वह ममता का स्टैंडर्ड कायम रख सके? नहीं। ममता ठीक कहती थी। जिस व्यक्ति में जितनी योग्यता है, इस समाज में उसे इतना ही मिलता है। रमेश बार-बार मन को समझाने का यत्न करने में तल्लीन रहा। पार्टी खत्म होने को आ गई।

रमेश को प्रोफेसर ने घेरा—"कहिए रमेश साहब!"

"बधाई है।" रमेश ने कहा "मेरी सहपाठिनी मेरी गुरुपत्नी हो गई हैं, इसलिए उन्हें भी बधाई।"

अरुणा के दांत चमक उठे। धीरे-धीरे वर-वधू के चारों ओर और भी लोग आ गए। रमेश भी उसी भीड़ में फंस गया; पर उसका मन ममता से मिलने के लिए छटपटा रहा था। प्रोफेसर के आने पर रमेश ममता को ढूंढ़ने लगा। वह बैरिस्टर के साथ उसकी कार में चली गई थी। आज उसे

घर से भी बैरिस्टर ही लाया था, क्योंकि ममता की गाड़ी की बैटरी ठीक काम नहीं दे रही थी।

एकाएक उसके कंधे पर किसी का हाथ पड़ा। मुड़कर देखा, मनोहर था। इस समय वह ठाठ का सूट पहने था। गले में क्रेवेट बांधे था और उसके हाथ में सुनहले छोर वाली स्टेट एक्सप्रेस 999 सिगरेट थी। "क्या देख रहे हो साहबे आलम ?" उसने पूछा।

"कुछ नहीं।" रमेश ने उत्तर दिया।

"कुछ नहीं ? कुछ नहीं तो यार, उस तरह कोई नहीं देखा करता। जाने भी दो। वह तो चिड़िया है चिड़िया। चलो, मेरे साथ चलो। समझे ? तुम्हें जिन्दगी दिखाऊं, समझे ? चलो मेरे साथ।" और मनोहर ने रमेश का हाथ पकड़ लिया। वे चल पड़े। कहां जा रहा है रमेश, यह वह स्वयं नहीं सोच पाता था। क्यों जा रहा है वह ? मनोहर तो आवारा है। कालेज का प्रसिद्ध लोफर। क्या कह रहा था वह ? चिड़िया ! क्या उसने वे शब्द ममता के लिए कहे थे ?

एकाएक एक टैक्सी रोककर मनोहर ने कहा, "बैठो।"

वे बैठ गए। टैक्सी विराट सड़कों पर भागती रही, और अन्त में एक मकान के सामने रुक गई। मनोहर ने पैसे निकालकर टैक्सी वाले को देते हुए रमेश से कहा, "रहने दो। तुम्हारे पैसे आज नहीं।" वह मुस्कराया, जैसे उसने कहा —हैं ही कहां तुम्हारे पास। मकान के भीतर रमेश के साथ घुसते हुए मनोहर ने अपनी वाणी को कुछ तीव्र करके सुनाते हुए कहा, "देखो तो मालती बीबी ! मैं किसे लाया हूं ?" कमरे के द्वार पर एक तरुणी खिंच आई। मनोहर ने कहा, "यह है रमेश बाबू।"

"तशरीफ रखिए !" तरुणी ने पीछे हटकर उन्हें कमरे में घुसने देकर कहा और मुस्कराकर रमेश को देखा।

"कहो भाई, कोई गाना सुनोगे ?" मनोहर ने सोफा पर बैठते हुए कहा।

"नहीं, मैं जाऊंगा।" रमेश खड़ा रहा।

मालती को चोट लगी। यह उसका सीधा अपमान था। "और फिर चले ही थे तो आए ही क्यों थे ? क्यों बाबू साहब ?" उसने अचकचाकर

पूछा।

"मुझे जाना ही चाहिए।" रमेश ने अविचलित स्वर से कहा।

"दुनिया में न जाने क्या-क्या होना चाहिए, तो क्या आप सबको ठीक कर लेंगे?" मालती ने व्यंग्य से कहा, जैसे रमेश इसका उत्तर नहीं दे सकेगा। मनोहर ने रमेश का हाथ पकड़कर बिठा लिया। पर रमेश ने कहा, "मैंने सबकी ज़िम्मेदारी नहीं ली है।"

और वह उठ खड़ा हुआ। मनोहर ने चौंककर देखा, सचमुच वह कुछ चला और द्वार के बाहर चला गया। मालती ठिठकी-सी खड़ी रही। वह अपमान को पी जाने का प्रयत्न कर रही थी। मनोहर ने ऐसे सिर हिलाया जैसे दोनों मूर्ख थे।

"यह कौन थे मनोहर बाबू?" मालती ने हठात् पूछा।

"कसम खुदा की, दुनिया भी एक तमाशाघर है। कुत्ता जैसे रोटी डालनेवाले हाथ को पहचानता है, इंसान उस पांव को खूब पहचानता है जो ठोकर के सिवाय कुछ नहीं देता।" मनोहर ने मालती को न देखते हुए उत्तर दिया।

"तुम जाओ मनोहर! मेरे सिर में दर्द है।" मालती ने सोफा के दूसरे छोर पर बैठते हुए कहा। उसके मुख पर एक अजीब उदासी थी।

"दवा दूं या रमेश को भेज दूं?" मनोहर ने व्यंग्य से पूछा।

"नहीं!" मालती ने कठोर स्वर से उत्तर दिया।

"तुम पूछ सकती हो," मनोहर ने कहा, "एक वेश्या होने के नाते पूछ सकती हो कि उस गरीब को तुम्हारे यहां लाने से मुझे क्या फायदा मिला? लेकिन मैं उसे सिर्फ दिखाना चाहता था कि बेवकूफ, दुनिया में सिर्फ दौलत की इज़्ज़त है। पर उस गरीब में भी बड़ा घमंड था!"

मनोहर हंसा।

उसके जाने पर मालती का हृदय भारी हो गया। उसकी इच्छा हुई कि वह एक बार जी भरकर रो ले। अपने घृणित जीवन में उसने अपने से भी घृणित व्यक्तियों को चापलूसी करते ही देखा था। वह जानती थी, समाज उसको जघन्य मानता है। परन्तु वह समाज में नहीं जाती। कोई आकर यहां भी उसे ठोकर मार सकता है, यह उसने कभी सोचा भी न था।

उसने सितार के तार छेड़ दिए। आज वह अपना दुःख इसी के सहारे खो देना चाहती है। स्वर उठे और कमरे सिसकने लगे। आज वह अकेली है। साजिंदे छुट्टी पर हैं। वह किसी की नौकरी नहीं है। बूढ़ा नौकर बाजार गया है।

"कौन है ?" उसे लगा कोई द्वार पर ठिठक गया है।

"मैं हूं।" रमेश ने प्रवेश किया।

"आप कैसे लौट आए हैं ?" उसने सितार पर से हाथ नहीं हटाया।

"शायद मेरा चला जाना ठीक नहीं था।" रमेश ने धीमे से कहा, और फिर उसके कंधे सिहर उठे। फिर कहा, "लेकिन मेरी यहां कोई गुंजायश नहीं है, मैं गरीब हूं···।"

"तो फिर लौटकर आने की वजह···" मालती ने सितार के एक तार को कुछ दबाते हुए उसी स्वर में पूछा, "मैंने आपसे पैसा मांगा था ?"

"मांगा तो नहीं था पर···" रमेश झिझक गया। मालती ने इसका लाभ उठाया। एकदम कह उठी, "मांगती जरूर, क्योंकि मैं एक वेश्या हूं।" फिर एकाएक वह हंसी। उस हंसी के विद्रूप का अन्त बनकर शब्द निकले, "क्योंकि मैं दुनिया को बरबाद करने के लिए ही यहां बैठी हूं।" फिर उसने नीची दृष्टि करके कहा, "शायद आपकी पत्नी बैठी आपकी राह देख रही थी।"

कैलेण्डर पर दिन बीतने लगे। रोज रमेश के पांव चलते हुए आते, और मालती की आंखें प्रतीक्षा में लगी रहतीं। कितनी ही बार ये आंखें आंसुओं से डबडबाईं। कितनी ही बार वेदना ने घुमड़कर सब कुछ कह देने का प्रयत्न किया, किन्तु वह सब कभी नहीं हुआ। वह गाती, वह सुनता, और सचमुच मालती ने सबको छोड़ दिया। उस दिन मनोहर वायु चल रही थी। कमरे में एक निस्तब्धता छा रही थी, झंकारती हुई मूर्छना-सी। रमेश ने उसके बालों को सहला दिया।

मालती पीछे हट गई। उसके नेत्रों में भय था। रमेश समझ नहीं सका। वह उसी आश्चर्य से देखता रहा।

"मुझे न छुओ रमेश बाबू! कहीं तुम्हारे पवित्र हाथ मुझे छूकर गन्दे न हो जाएं।" मालती की आंखों में आंसू भर आए।

"गन्दे वे होते हैं मालती, जिनका दिल गन्दा होता है।" रमेश की गहराइयों से स्वर निकले और मालती ने सुना। उसने उठकर रमेश के चरणों पर अपना सिर रख दिया। वह रोई और खूब रोई। जब उसका जी हल्का हो गया, रमेश ने उसके आंसू अपने हाथ से पोंछ दिए, वह हंस दी। रमेश पास बैठ गया। मालती सितार बजाने लगी। कितनी द्रावक वेदना थी उस स्वर में, कितना आन्दोलित अनुराग था, यह आज उसने समभाग करके रमेश के साथ बांट लिया।

शाम हुई। लम्बी छायाएं और लम्बी हो गईं और एक नीरवता आकाश से उतरकर पृथ्वी पर समा गई। दोनों का मन एक हो गया। अकथनीय घात-प्रतिघात ने उनके हृदय को कितनी ही बार कंपा दिया। दिन निकला। सूर्य आकाश पर भागने लगा। पर उस क्षण वह सब एक महान इन्द्रजाल की भांति दिखाई देता रहा। मालती के मानस-घट पर आज स्नेह के अक्षत पवित्र उत्सव के लक्षण बन गए। फिर रात हुई। और अन्धकार के गहन स्तरों पर टिमटिमाते नक्षत्रों की निस्पन्द तन्द्रा ने रात की नींद को रोककर लम्बे उच्छ्वासों के ताने-बाने बुन दिए। यह यों बीत गई। और नयनों की गाथा फिर भी समाप्त नहीं हुई जैसे सृष्टि के समस्त क्रम भीतर से उमड़ते स्नेह की धारा में मिल गए, अपने-आपको खो बैठे।

"मालती! लहरों से टकराकर जान दे देना बहादुरी नहीं, जिन्दगी

की दलदल में सीने तक डूबकर मौत को चुनौती देते रहना ही बहादुरी है।" रमेश ने उसे भुजाओं में भरकर कहा, "मैं डूबना चाहता हूं, अपने-आपको भूल जाना चाहता हूं, पर मैं गरीब हूं, लाचार हूं।"

"तुम औरत को नहीं जानते रमेश बाबू ! औरत पैसा नहीं, दिल चाहती है। जब उसे प्यार मिलता है तब वह दुनिया की बड़ी से बड़ी मुसीबत झेल सकती है।"

रमेश ने उसे छोड़ दिया। मालती का वाक्य उसे चिन्तित करने लगा। वह सोचने लगा—क्या यह ठीक है ? मालती बगल के कमरे में चली गई।

स्त्री की बात पुरुष की मर्यादा को अगर लांघ नहीं पाती, तो वह उसमें उथल-पुथल मचा देने की भारी शक्ति रखती है।

रमेश को लगा—वह एक दूसरे ही रंग के सामने खड़ा था। स्त्री एक फानूस है। उसमें से अनेक प्रकार के रंग निकलते हैं। पहला रंग केवल विभ्रम था। ममता ! ममता ने कहा था, 'चलूंगी ! लेकिन तुम्हारा कहीं ठिकाना है ? याद रखो जहाज़ के तैरने के लिए समुद्र चाहिए।'

और फिर उसके साथ ही चलचित्र की भांति स्मृति के पथ पर एक और नारी कह उठी, 'मेरे देवता ! तुम जैसे चाहोगे वैसे रहूंगी, मुझे धन नहीं चाहिए, मैं तुम्हें चाहती हूं···'

वह शोभा थी। रमेश किसे स्वीकार करे ? जहां समर्पण है, वहां पुरुष की अहम्मन्यता और भी अहंकार करती है, जहां चट्टान का गर्व है वहां वही दुरभिमान लहरों की तरह सिर पटकता है, और यह···

"मालती !" रमेश आवेश में पुकार उठा।

मालती भयातुरा-सी दौड़कर आई। रमेश गद्दे के सहारे आंखें मीचे पड़ा था। "क्या है ? क्या है रमेश बाबू !" मालती ने घबराए हुए स्वर से कहा, "आपकी तबियत तो ठीक है ?"

"कुछ नहीं, कुछ नहीं।" रमेश चैतन्य हुआ।

वह पास आकर बैठ गई। देखती रही। फिर उसने बहुत देर बाद बहुत धीरे से पूछा, "जब अंधेरे में दो दीपक हों और उनमें से एक बुझ जाए तो क्या करना चाहिए ?"

"जलनेवाले के होंठ बुझनेवाले के होंठों से छुआकर उसे भी जला देना चाहिए, ताकि रोशनी अंधेरे को हटा सके।"

"एक बात कहूं ? विश्वास करोगे ?"

"क्यों नहीं ?"

"चलो, कहीं भाग चलें।"

रमेश चौंका, "कहां ?"

"जहां तुम और मैं हों और कोई न हो। पाप का धन मेरे पास बहुत है। मैं एक ऐसा आदमी चाहती हूं, जो मुझे प्रेम करे। इसलिए मेरा अपमान न करे कि मैं वेश्या हूं।" मालती ने उद्रेकित स्वर से कहा, "चलो रमेश ! मुझे इस पाप के जीवन से निकालकर ले चलो। किसी दूसरे शहर में हम पति-पत्नी के रूप में जा बसेंगे। मुझे धन और नाम नहीं चाहिए, मुझे शांति चाहिए, प्यार चाहिए···चलो रमेश···"

रमेश ने स्वीकार कर लिया। मालती ने सारा रुपया बैंक से निकालकर अटैचीकेस में नीचे की तरफ जमाया। जिसको जो चुकाना था वह चुका दिया। फिर पड़ोस की वेश्या के एक नौकर को घर की चाबी दे दी कि वह मकान-मालिक को सौंप दे। अपने जाने का कारण उसने इस भय से किसी से नहीं कहा कि कोई हंसे नहीं। व्याघात न डाले।

× × ×

जिस समय वे स्टेशन पर पहुंचे, रमेश गम्भीर था। आज वह एक नये मोड़ पर था। बार-बार हृदय कहता था कि यह तो वह राह नहीं थी जिस पर चलने का लक्ष्य बनाया था। पर भाग्य बलवान है। चलने दो, जिधर राह मुड़ती है···

मालती विभोर थी। उसके सामने आज हर चीज़ नई थी। आज वह स्त्रीत्व का अनुभव कर रही थी।

"आज मेरे जीवन का सबसे सुन्दर दिन है।" उसने आर्द्र कंठ से कहा।

"क्यों ?" रमेश ने पूछा।

"अब भी पूछते हो ? मैं उस दुनिया को छोड़ आई हूं। अब हम नया घर बसाएंगे।"

"मैं अभी आता हूं, टिकट ले आऊं। यहीं, तुम यहीं ठहरो।" रमेश

अब दूसरी गाड़ी ही पकड़नी होगी। वह बैठ गई। रेल चली गई। स्टेशन पर फिर सन्नाटा छा गया। तूफान आया, चला गया। मालती अकेली झुंझलाती बैठी रही। आने दो, वह डांटूंगी कि ठीक हो जाएंगे।

मालती को ध्यान आया। अचानक जैसे बिजली कौंधती है; और फिर उसके बुझ जाने पर पहले से भी अधिक अंधकार पथ को ढंक लेता है।

मालती कांप उठी।

क्या सोच रही है वह ?

क्या यह हो सकता है ?

उसने फिर दुहराया—क्या यह हो सकता है ?

नहीं। अन्तरात्मा ने कहा—मालती, तू नीच है जो उसके विषय में ऐसे घृणित विचार तेरे भीतर अभी तक पल रहे हैं।

वह फिर चली। जाकर स्टेशन का कोना-कोना छान डाला। दो-चार कुलियों से पूछा भी। पर वे कुटिलता से मुस्कराए। फिर उसको पूछने का साहस नहीं हुआ। सब जगह स्वयं ही जाकर नज़र गड़ाकर देखा। पर रमेश नहीं था, नहीं मिला।

तब उसका सोचना सत्य था। वह उसे छोड़ गया था। इससे भी भयानक बात थी कि वह उसका सारा धन ले गया था।

उसे चक्कर आ गया। बिजली का खंभा पकड़े खड़ी रही। जब कुछ देर में चैतन्य हुई तो मन किया—फूट-फूटकर रो ले। क्या संसार के सारे पुरुष ऐसे ही होते हैं ? कुछ दांत दिखलाते भेड़िये, कुछ केंचुल में छिपे सांप ?

गाड़ी चली गई थी। अब और कोई चारा भी नहीं था। कहां जाए वह ! पास में सौ रुपये हैं। उससे वह क्या कर सकती है ?

स्टेशन पर लोग उसे घूरने लगे।

इस समय वह कहां जाए ? कहीं भी जाए, पर स्टेशन उसे छोड़ना ही चाहिए, वरना यहां गुण्डे उसे फिर घेर लेंगे।

वह स्टेशन के बाहर हो गई। एक पार्क में जाकर एक पेड़ की छाया में छिपकर बैठ रही। जी भरकर रोई। इतनी रोई कि हिचकियां बंध गईं। फिर भी मन की वेदना घटी नहीं। वह इससे भी कुछ भयानक काम

करना चाहती थी। अंत में वह उठ खड़ी हुई। उसके चरणों में निश्चय था।

वह समुद्र की ओर चल दी। जिस समय वह एकांत तीर पर पहुंची, समुद्र अपनी गहरी हरी लहरों के उत्तुंग ऊर्जस्वित आलोड़न में थर-थर कांप रहा था और फेनिल फूत्कार करता हुआ अहेरी पशु की भांति हांफता दिखाई दे रहा था। मालती पानी में बढ़ने लगी। एकाएक उसे वास्तविकता का भान हुआ। पानी की थपेड़े मारती लहरें उसे छाती तक भिगो गईं। वह लड़खड़ा गई। लहरों ने उसे किनारे पर फेंक दिया।

नहीं, मरूंगी नहीं। उसने सोचा। मरकर क्या होगा? पाप की डोरी का अंत उस सबसे बड़े पाप की गांठ में होगा जो अटक जाएगी और उसे कभी भी पार नहीं होने देगी।

'ज़िंदगी के दलदल में सीने तक डूबकर मौत को चुनौती देते रहना ही बहादुरी है।' एकाएक उसके कानों में गूंजने लगा।

मालती चट्टानों पर रोने लगी।

रमेश! उसने उसे प्यार किया था। वह इतना नीच था। सारे प्यार को पराजित कर गई दौलत। धन की चमक ने उसे अंधा कर दिया। जिसके लिए वह सब कुछ त्याग आई थी, वही धोखा दे गया उसे। क्या होगा इस जीवन का? परन्तु फिर ध्यान आया। प्रेम पाथेय है। जीवन पथ। मैं नहीं मरूंगी, उसने दुहराया, मरकर मेरे दुःख का अन्त नहीं होगा। और उस समय लहर ने दुहराया, मरूंगी नहीं···मरूंगी नहीं।

रमेश जब बुकिंग पर गया तो उसके दिमाग में अनेक बातें आने लगीं। मालती के साथ वह कहां जा रहा है? उसने कब यह कल्पना की थी? यह ठीक है कि दया के नाते यह सब ठीक है, पर क्या यही उसका उद्देश्य भी है?

वह चुपचाप सिगरटें पीता रहा। इस समय उसे सिवाय आज की बातों पर सोचने के और कोई भी काम दिखाई नहीं दे रहा था।

शाम को उसने होटल की बत्ती जला दी। और फिर मन ही मन कहा, 'मनुष्य अपने पथ से विचलित हो जाए तो वह जीवन में कर भी क्या सकता है?'

तब उसने मालती का सूटकेस खोला। उसके हाथ उस समय न जाने क्यों अपने-आप कांप उठे जैसे वह परवश थे, और यह काम वास्तव में करना नहीं चाहते थे। बक्स में चुनी हुई नोटों की गड्डियां रखी थीं।

धन !

सामने धन रखा था।

वह उन्हें पागलों की तरह देखता रहा। किसी श्रम के बिना वह सहज ही प्राप्त हो गया है। लोग इसके लिए दुनिया में ईमान बेचते हैं। इसी के अभाव में उसकी मां भी खांस-खांसकर मर गई। किसी के कान पर जूं भी नहीं रेंगी। कौन किसी की चिन्ता करता है? धन वाले के सुख-दुःख का सहयोगी संसार बनता है।

'तूने पाप किया है रमेश,' किसी ने भीतर से कहा। यह भीतर की आवाज़ कहती रही, 'तूने पाप किया है···' रमेश इसे सुनना नहीं चाहता, पर उसका एक पक्ष यह है कि 'तूने मालती को धोखा दिया है···उसने तेरे ऊपर स्नेह संचित किया था, तू उसको ठोकर मारकर आया है, विश्वासघाती !'

रमेश इस सबको आज सोचना भी नहीं चाहता। सोचने से उसका हृदय कांपने लगता है। यह सब निर्बलता की बातें है। वेश्या का धन कौन पुण्य का धन है ! न जाने इस स्त्री ने कितनी स्त्रियों का सुहाग उजाड़ा होगा। और वेश्या कैसा भी प्रेम करे, घर की औरत की तरह तो हो नहीं सकती। वासना की पुतली का प्रेम लहर है, उतरते ही फिर दुनिया में खेलना चाहेगी। धन सबसे बड़ी बात है। और तभी उसे याद आया, शोभा कह उठी, 'मेरे देवता ! तुम जैसे चाहोगे मैं वैसे ही रहूंगी, मुझे धन नहीं चाहिए, मैं तुम्हें चाहती हूं।' रमेश ने सिर पकड़ लिया।

धन ! धन से भी बढ़कर मनुष्य का संस्कार है। पर संस्कार तो रूढ़ियों का भयमात्र है।

ममता हंसी। उसके गदराए यौवन ने बसंत को जैसे ठोकर देकर जगाया और कहा कि मूर्ख, सांप बनकर तनिक विष तो उगल। और वह उगलने लगा। ममता के शब्द गूंजने लगे, 'चलूंगी लेकिन तुम्हारा कहीं ठिकाना है? याद रखो जहाज़ के तैरने के लिए समुद्र चाहिए···'

रमेश के हृदय को ठंडक पहुंची। पर उसे लगा वह दौलत ठंडी नहीं थी। उसमें तपिश थी। वह मालती की वेदना है जो बार-बार जलाने को आ रही है, रमेश सुन रहा है; औरत पैसा नहीं चाहती, दिल चाहती है, जब उसे प्यार मिलता है तब वह दुनिया की बड़ी से बड़ी मुसीबत झेल सकती है।

वह पागल-सा उठ खड़ा हुआ। उसने बक्स बन्द कर दिया। बत्ती बुझा दी और सिगरेट सुलगाई। कमरे में कोई नहीं था। केवल ममता खड़ी अंगड़ाई ले रही थी। रमेश की इच्छा हुई, थोड़ी-सी शराब पी ले।

उसने घंटी बजाई। वेटर शराब दे गया। बाहर कुछ लड़ाई में विदेशों से आए सैनिक मस्ती से गा रहे थे। रमेश पर सुरूर चढ़ रहा था। अब वह सब कुछ भूल गया था। "मैं चढ़ूंगा, जीवन की हर सीढ़ी पर विजयी होकर चढ़ूंगा," उसने अहंकार से कहा और आवाज़ दी—"वेटर! एक पैग और…"

पर स्त्री का जीवन इतना सरल नहीं होता। जिस यौवन के बिछौने पर मातृत्व का फूल महकता है, उस पर पहले काला सांप अपना विष छोड़ने का मान करता है, वह सांप है पुरुष का भोगप्रधान अधिकार।

मालती सड़क पर भटकने लगी। उसके कपड़े गन्दे हो गए और उसका गोरा रंग, जो नज़ाकत में पला था, अब धूलि से मटमैला हो गया। वहां स्निग्धता खो गई। उसके पांव नंगे रहने के कारण फट गए। भूख उसे सताने लगी। कब समुद्र में लहरों ने उसका नोट चुरा लिया, यह उसे ज्ञात नहीं हुआ। पर उसने यह अवश्य अनुभव किया कि सड़क पर चलने के लिए गरीब बनना ही आवश्यक है। वह चलते-चलते थक गई। साफ कपड़े पहने कोई सड़क के किनारे बैठ जाए तो पचास लोग घूरते हैं। हां, गन्दे वस्त्र पहने कोई सड़क की धूलि में भले ही सोया करे, कोई नहीं देखता। पर मालती को अब गुण्डे घेरने का यत्न करने लगे। आखिर वह जवानी को कहां छिपाती! इस प्रकार के अपमान से उसका हृदय भीतर ही भीतर रोने लगा। तब क्या बुरी थी, जब वह वेश्या थी। खुले आम बैठी थी, तब कम से कम रहने का तो सुख था! खाना तो था!

दूर से नाच-गाने की आवाज़ आने लगी थी। यह वेश्याओं का मुहल्ला था। और मालती की प्रतिहिंसा कुतिया की तरह खिसियाकर दांत निकालने लगी।

फिर उसी जिन्दगी में लौट चलूं। क्यों न लौट जाऊं वहीं। मेरा है ही कौन ? मुझे किसी ने अपनाया है ? मालती, चल, वहीं चल···और कदर्य जुगुप्सा से धीरे से तर्क का कोड़ा फटकारा—मालती ! वहां लुटेरे तेरे कदमों के नीचे बैठकर कुत्तों की तरह दुम हिलाते हैं···

वही जीवन···नाच-रंग ··इश्क की गज़लें···क्या हर्ष है···प्रेम और पवित्रता उसके जीवन में कहीं नहीं है···

वह आगे बढ़ी। वे लोग, उसके पुराने प्रेमी, उसे देखकर खिल उठेंगे। फिर···उसका कमरा चमन हो जाएगा। फिर रमेश जैसे लोग उसके पांव दबाया करेंगे। क्यों न चले वह उसी ओर···वहां उसके प्रेमी हैं···

नहीं-नहीं, उसे याद आया। वे प्रेमी नहीं, उसे चूसनेवाले पशु हैं। वे उसे खा जायेंगे। वहां नहीं। उसे वहां कोई शान्ति नहीं है। उस जीवन से घृणा थी, तब तो वह उसे छोड़कर ही आई है। चाहे कुछ भी हो, वह वहां नहीं जाएगी, जहां उसे घृणा से आलिंगन करना पड़ता है···मालती ने सोचा···मैंने उसे नहीं पाया जिसे प्यार किया था···वह भयभीत होकर मुझे छोड़ गया···वह कायर था···उस प्यार की कसम·· अब जीवन को पतन की ओर नहीं जाने दूंगी···तपूंगी···तपकर निखरूंगी···अब फिर उस नरक में नहीं जाऊंगी···अपने-आप प्रायश्चित्त करूंगी···प्रायश्चित्त··· मन हंस उठा···चाहे कुछ भी हो···

विराट है यह महानगर। इसके एक मुहल्ले से दूसरे मुहल्ले में जा बसने पर कोई किसी को नहीं पहचानता···

क्या एक औरत ईमान से जिन्दगी नहीं गुज़ार सकती ··

क्यों नहीं···

क्या गरीब इज़्ज़त से नहीं रहते ? क्या गरीब औरतें जवानी बेचकर रहती हैं ? क्या उनमें विधवाएं नहीं होतीं ? मालती को दूसरों की विपत्ति में अपनी निस्सहायावस्था को सम्भाल ले जाने का ढाढ़स मिला। वह क्या मेहनत-मजदूरी करके नहीं रह सकती ? जिस समाज में स्त्री बच्चे को

जन्म देकर उसे वेश्या का अपमान करना सिखाती है, वहां स्त्री का उद्धार हो भी तो कैसे ! वह एक द्वार पर बैठ गई। बैठे-बैठे ऊब गई तो भूख ने सिर उठाया। वह भीतर चली। उसके पांवों में अधिक शक्ति नहीं थी। पर उसकी गति में नौकरपन नहीं था अर्थात् वह दुर्बल नहीं लगती थी।

एक स्त्री बंगले के बरामदे में बैठी थी। गोरी। फरफरे बाल वाली। शायद कुछ पढ़ रही है। युवती है। होगी किसी की बीवी।

मालती थककर बैठ गई। स्त्री ने सिर उठाकर देखा। उसकी दृष्टि की अधिकारपूर्ण भावना को देख मालती को अपने अभाव कचोट उठे।

"कौन है तू ?" स्त्री ने पूछा।

"बीबीजी, मैं एक गरीब औरत हूं।" मालती ने अटक-अटककर कहा, "आप बड़े लोग हैं। नौकरानी की ज़रूरत है ?"

उसका रूप देखकर स्त्री कुछ सकते की-सी हालत में रही। नौकरानी-सी तो नहीं लगती। पर कौन जाने, शायद इसका मालिक बड़े प्यार से रखता होगा। अब नहीं रहा तो पेट के लिए नौकरी करनी पड़ गई।

"है तो, पर तू काम क्या कर सकती है ?" स्त्री ने कहा, "क्या लेगी ?"

मालती ने धीरे से कहा, "खाना, कपड़ा और जो देंगी। वैसे काम सब कर डालूंगी मालकिन, जो भी कहेंगी। पर बाज़ार-हाट नहीं जा सकूंगी।"

"वह चौकीदार कर लेगा। कहां रहती है ? यहीं रहेगी न ?" मालती की 'हां' सुनकर उसने कहा, "ममता ! गुड लक ! आ जा ! ज़रा मेरे जूते पर पालिश कर दे, मुझे पार्टी में जाना है," वह प्रसन्न हो उठी थी। उसने फिर कहा, "देखो, वह जाली की आलमारी में रोटी रखी है, खा लेना, पड़ोस में महाराजिन सब्ज़ी बनाने आती थी। तू रोटी तो अच्छी बनाती है ? क्यों नहीं, ज़रूर जानती होगी।"

ममता ने मालती को घर दिखाया। घर बहुत बड़ा नहीं था। साफ-सुथरा। ममता ने मालती को कोठरी दिखा दी। कहा, "आखिर करके नहा लेना। यह साड़ी तू पहन लेना। ज़रा साफ रहना सीखना होगा, अच्छा ?"

मालती पालिश करने लगी। मन बार-बार मुंह को आता। मालती ! यह तू क्या कर रही है ? तू किसी के जूते पर पालिश कर रही है ? पर यह पवित्र है, यह पवित्र है, इसमें मेहनत है, हराम नहीं है।

जूते पहनकर ममता खड़ी ही हुई थी कि एक कार धड़धड़ाती हुई अहाते के भीतर घुस आई। उसमें बैठा हुआ बैरिस्टर बिहारीलाल था। ममता कार में बैठ गई। कार चली गई। मालती नहाई। साड़ी बदली और तब मालती ने रोटी निकाली। देखा डबल रोटी थी।

हे भगवान ! ईमान की यह सूखी रोटी पाप के पकवानों से कहीं अच्छी है। उसे खाकर वह खाना बनाने लगी।

रात हो गई। मालती सोचने लगी। बारह का घंटा बजा। मालकिन अभी तक नहीं आई। वह बाहर आई। चारों तरफ अंधेरा था। दूर कहीं रोशनी दिखाई दी, और मालती ने देखा, उजाला इधर ही मुड़ा। मोटर भीतर आई। ममता उतरते समय किलकारी मारकर हंसी। मोटर चली गई। ममता भीतर जाकर पलंग पर लेट गई। मालती उसके जूते खोलने लगी। मालती का दिल करता था, रो उठे। पर रोई नहीं।

पूछा, "मालकिन, खाना नहीं खाएंगी ?"

"तूने बनाया है ?"

"जी हां।"

"ले आ।"

मालती ले आई। ममता ने खाया। कहा, "मामूली है। पर सीख जाएगी।"

"आप बताएंगी तो सब धीरे-धीरे सीख जाऊंगी।"

"अरे, मैं क्या जानती हूं ? मैं चूल्हा फूंकने को पैदा ही नहीं हुई बावली।"

वह हंसी। मालती अप्रतिभ हुई।

"जा, सो रह।" ममता ने कहा।

मालती लेट गई। अन्तरात्मा ने कहा, 'हे भगवान ! यह चिथड़ों का बिस्तर पाप के उन गद्दों से कहीं ज़्यादा अच्छा है।'

पर फिर वह रो दी।

सुबह जब वह चाय बनाकर ले गई, ममता सो रही थी। धीरे से जगाया। ममता ने चुस्की ली और पूछा, "तेरा ब्याह हो गया?"

"हो गया बीबीजी।"

"तेरा आदमी कहां है?"

मालती ने सिर झुका लिया।

"छोड़ गया?" ममता ने कहा, "गरीबों की भी बड़ी आफत है।"

"नहीं बीबीजी," मालती ने कहा, "ऐसे भी लोग होते हैं जो हर तरह के दुःख सहते हैं परन्तु पैसा उनके लिए कुछ भी नहीं होता।" ममता ने आश्चर्य से देखा और कहा, "उन्हीं को बेवकूफ कहते हैं।"

8

शोभा का जीवन दिन-भर काम करनेवाले बैल के समान था। वह खूब परिश्रम करती। रात को ही चैन मिल पाता। गांव के एक ज़मीन-जायदाद की छोटी पूंजी वाले मुरलीधर ने नौकर रखा था। मुरलीधर की मूंछें उठी रहतीं। वह लाल-लाल आंखों वाला आदमी दूसरों के खेतों में अपनी गाय छोड़कर मस्त रहनेवालों में से था।

उसकी स्त्री कर्कशा थी। दो दांत बाहर निकले हुए थे। उससे दया की आशा व्यर्थ ही थी। शोभा दिन-भर जानवरों का काम करती, बर्तन मलती, कुएं से पानी लाकर भरती, पर सोती अपने घर आकर। स्त्री का यौवन पुरुष की भांति नहीं होता। वह अधिक दिन नहीं चलता, पर फूटकर निकलता है, और स्त्री को तो उससे कष्ट भी निकलने लगते हैं कि वह सब कुछ सह सकती है, पर यौवन नहीं।

पनघट पर चन्द्रकला नाम की स्त्री का बहुत प्रभाव था। वह अपने

पति का घर लड़कर छोड़ आई थी और गांव में ही रहती थी, मायके में; बड़ी ही बोलनेवाली थी वह। उसकी मां भी लड़ाई में पीछे रहना नहीं जानती थी। उसने भी अपने पति को कबूतर बना रखा था।

उसे शोभा से द्वेष था क्योंकि वह पवित्र थी और चन्द्रकला दिन में सोलह बार बढ़ती, उतनी ही बार घटती। गांव की युवतियां चन्द्रकला से प्रभावित थीं। उन्हें नित-नये फैशन करने की चाट चन्द्रकला ही लगाती। शहर के फैशन गांव में बड़े हास्यास्पद हो जाते हैं, इस पर उनका ध्यान कभी नहीं जाता। उस दिन पनघट पर चन्द्रकला ने कहा, "ऊंहूं! जब से इस मनहूस ने उस घर में पांव रखा, सास को ही खा गई और उसे भी नहीं छोड़ा...।"

"उसे? उस पर तो जादू करने गई थी गुइयां। वह तो निकल ही गया।" एक दूसरी ने कहा।

"कौन जाने? बुढ़िया के बाद अकेले ही तो थे संग-संग।" चन्द्रकला मुस्कराई और फिर उसने नयन चलाकर कहा, "अब यह मुरलीधर ही कितने सुख ले लेगा?"

सब हंस दीं। शोभा को लगा—वह, धरती फटे और वहीं समा जाए। पर उससे लड़ने का साहस नहीं हुआ। वह खिन्न-सी लौट चली। दुष्ट को सज्जन उत्तर न दे, तो नीच और सिर पर चढ़ता है। शोभा चली गई। घर पहुंचकर उसने घड़ा उतार दिया। उस समय एकान्त में उसने आंचल उतारकर निचोड़ा। मुरलीधर भीतर से निकल रहा था। सामने आकर घूरने लगा। आंचल ओढ़कर खड़ी रही। शोभा समझी नहीं।

मुरलीधर ने उसको घूरकर कहा कुछ नहीं, एक लम्बी सांस छोड़ी। शोभा नहीं बोली। मुरलीधर बढ़ा और उसने उसका हाथ पकड़ लिया। शोभा चकरा गई। अभी बाहर की स्त्रियों की बातचीत से ही वह अपना सन्तुलन ठीक नहीं कर पाई थी कि तभी फुसफुसाकर मुरलीधर ने आवेग से कहा, "शोभा!"

"भइया!" उसने सहज ही पूछा।

"तू मुझे भइया क्यों कहती है? मैं तो तुझे...।" मुरलीधर की आंखों में जहर की कटार चमक उठी। शोभा थर्रा गई।

"छोड़ दे मुझे···" शोभा ने झटका दिया और दौड़कर दीवार से सटकर खड़ी हो गई। उसकी आंखें फट गईं।

"हाय राम! यह क्या हो रहा है?" अचानक मुरलीधर की स्त्री का कठोर स्वर सुनाई दिया। मुरलीधर गम्भीर खड़ा था। स्त्री ने हाथ नचा-कर कहना प्रारम्भ कर दिया, "अब समझी कि सारा गांव कहता रहा कि इसे मत रखो, पर तुम्हें तो और ही काम था! मुझसे घनश्याम ने कहा था कि यह वड़ी चुड़ैल है। वाह-वाह पटैल, तुमने कमाल किया!"

"मैं क्या करता; वही कहती थी···" मुरलीधर ने खिसियाकर क्रोध से कहा। और पुरुष के सारे अपराध इतने ही पर क्षमा कर दिए गए।

"तुझे हया-शरम नहीं रही डायन! भरी गृहस्थी को आग लगाने चली आई।" मुरलीधर की स्त्री ने कहा। शोभा शरम से गड़ गई। वह ऐसी खड़ी थी जैसे उसे काठ मार गया था। स्त्री चिल्लाती रही। उसका ऊंचा स्वर सुनकर पड़ोस के लोग द्वार पर इकट्ठे होने लगे। स्त्रियां भीतर घुस आईं। उनकी फुसफुसाहट सुनाई दी।

चन्द्रकला आगे आई। देखा। बोली, "भाभी! क्या हुआ? हम न पहले कहते थे, क्यों?"

चन्द्रकला की वास्तविकता सब जानते थे, परन्तु कोई कहता नहीं था। चन्द्रकला गुण्डों को अपनाए थी जो ज़रा बोलते ही दूसरे बहानों से लड़ने को तैयार रहते थे।

"मेरी सौत बनने आई थी चुड़ैल।" स्त्री ने शोभा का हाथ पकड़कर कहा। उसे बड़ा क्रोध आ रहा था, "तेरे मुंह में आग लगा दूं, निकल मेरे घर से।" स्त्री ने धक्का देते हुए कहा—"निकल मेरे घर से, निकल···" और भीड़ की ओर धकेलते हुए उसने कहा, "चली जा चुपचाप·· खबर-दार, मेरे घर आई तो टांग तोड़ दूंगी···"

शोभा जड़ हो गई थी। जैसे जो कुछ हो रहा है वह कुछ भी समझ नहीं पा रही है। एक ऊंचे स्वर का अट्टहास उपस्थित कण्ठों में से निकल-कर गूंज उठा। स्त्रियां खिलखिलाकर हंसीं। बर्बरता की विभीषिका ऐसे ही क्षणों में नंगी होकर नाचने लगती है।

शोभा को उस कठोर हास्य ने जगा दिया। उसे अनुभव हुआ, वे सब

उसी पर हंस रहे थे···

वह भाग चली···और उनका विद्रूप-भरा हास्य उसके पीछे तैरता हुआ फुफकारता रहा। शोभा रुकी नहीं।

अपनी कोठरी में खाट पर पड़कर रोने लगी···रोने में उसे सुख मिला हो, सो कुछ नहीं। रोना परवशता का परिणाम था और एक सहज स्वाभाविक बात थी। अगर रोना नहीं होता तो हृदय दुःख से फट जाया करते।

सांझ आई। छायाओं ने पश्चिम को देखकर पूर्व छूने का प्रयत्न किया। घरों में से धुआं उठा। शोभा को प्यास लगी। पर बाहर नहीं गई। वह डर रही थी। सब लोग फिर हंसेंगे। फिर रात गई तो अंधेरा हो गया। तब वह चुपचाप कुएं से घड़ा भरकर लाई। आज उसने कुछ नहीं खाया और जी भरकर पानी पिया। पेट भर-सा गया। और फिर वह खाट पर पड़ी रही।

× × ×

सुबह हो गई। शोभा चुपचाप रोती ही रही। कोई सहारा नहीं था। घर स्वयं डर रहा था। वे कठोर आंखें जब ध्यान में आतीं तो रोआं-रोआं थर्रा उठता। शोभा कांपने लगती।

उस समय सारे गांव से एक आदमी आया। वह था हरखू। उसके मुख पर अथक अवसाद घुमड़कर स्थिर हो गया था। सब सुन चुका था। जानता था कि मुरलीधर पुराना बदमाश है।

"भैया!" वह उसके पांव पकड़कर लिपट गई। अब जो रोई, वह और प्रकार का रोना था। इसमें ग्लानि नहीं थी, एक दुःख की कथा का मूक प्रवाह था।

"जानता हूं बहिन! सब जानता हूं," हरखू ने कहा, "गांव में भले लोग नहीं रहे।" वह चुप हो गया। शोभा सिसकती रही।

"आज अगर रमेश होता तो।" हरखू ने हठात् शोभा को झनझना दिया और बात अधूरी ही छोड़ दी।

शोभा ने सिर उठाकर देखा जैसे पूछ रही हो—आगे कहो। क्या वे मेरी रक्षा करते? यदि यही होता तो छोड़ क्यों जाते? पर अब उसे अपने पुरुष की याद आ गई थी। उसने सिर उठाए ही कहा, "मैं

जाऊंगी, अव इस गांव में मैं नहीं रह सकती…"

हरखू ने द्रवित कण्ठ से कहा, "शोभा, तू नादान ही है, तभी सब सिर पर चढ़कर वोलते हैं। तू कहां जाएगी ?"

उसकी आवाज़ में भय था। पर शोभा डरी नहीं। उसे संवल मिल रहा था। उसने कहा, "जहां भाग ले जाएगा।"

हरखू के होंठों पर उदास मुस्कराहट दिखाई दी। उसने उलाहने के रूप में धीरे से कहा, "तेरे भाग ही अच्छे होते तो यह दिन ही क्यों आता !" शोभा ने अनुभव किया कि वह सच कहता था। हरखू वोला, "एक बात कहूं ?"

उस स्वर में सौहार्द और शुभकामना छलक रही थी।

"कहो भैया !" शोभा ने कहा।

हरखू चुप ही रहा। शोभा के दूसरी बार पूछने पर उसने अटकते हुए कहा, "पूछता हूं शोभा ! तू किसी से ब्याह क्यों नहीं कर लेती ?"

शोभा तमककर खड़ी हो गई। हरखू ने उस सीधी-सादी लड़की का यह रूप देखकर आंखें झुका लीं। शोभा में तप:पूत जीवन की शिखा जली और आंखों में गौरव बनकर झलकी। उस समय आवेश की स्पर्धा मिट गई, वह सिर झुकाकर हरखू के नेत्रों में जा वैठा। शोभा को देखकर लगा—जैसे वह वहुत कुछ कहना चाहती है, पर क्या कहे, यही सोच रही है। युगों का अभिमान, जो उसे अदम्य वनाए था, जिसके वल पर समस्त दु:खों को वह झेले चली जा रही थी, वह उठा। हरखू समझ नहीं सका कि धर्म का संस्कार था, या स्त्री का वह आदिम अभिमान था कि वह उसी पुरुष को पराजित करके रहेगी जिसने उसे ठुकराया है। वह उन पुरुषों को कुत्ता समझती है जो उसकी कृपा के लिए लालायित घूमते हैं, और सिर झुकाती है उसके सामने जो उसकी उपेक्षा करता है और शोभा में व्यक्तित्व का यह दंभ अपना आधार धर्म में पाकर इतना दृढ़ हो गया था कि उसे अपनी कामना अव अपनी व्यक्तिगत नहीं दिखाई देती थी, वह उसके लिए भाग्य का वह वंधन वन गया था, जिसे पत्थर की लकीर कहना भी उसकी दृढ़ता को छोटा करके दिखाना है।

हरखू ने देखा और देखा कि शोभा इस समय वह शोभा नहीं थी जो

पांव पकड़कर रो रही थी।

"शोभा !" उसने धीरे से कहा, "जोश में न आ। धीरज से सोचकर देख।"

"व्याह ! व्याह क्या बार-बार होता है ?" शोभा ने करुण स्वर से कहा, जैसे अपने भाई की करुणा जगा रही थी। उसने नीचे देखते हुए सिर झुकाकर धीरे-धीरे कहा, "मैंने जिसे अपना बनाया था, जब वही अपना नहीं हुआ तो और मुझे कौन तार सकेगा !"

उस स्वर में युगों की सिसक घुटकर घुमड़ रही थी। हरखू ने नाटक देखा था जिसमें सीता ने वाल्मीकि से शायद ऐसी ही बात कही थी। उसकी आंखों में अब आंसू आ गए। हरखू वैसे भी अच्छा आदमी था। शोभा की बात उसको लग गई।

हरखू ने कहा, "तू ठीक कहती है।"

शोभा ने उत्तर नहीं दिया।

"वह तुझे भूल गया लगता है," हरखू ने ही कहा, "समझ में नहीं आता। वह बड़ा अच्छा लड़का था। पर शहर ने उसे बदल दिया। वरना सारे गांव में ऐसी सुन्दर बहू, ऐसी अच्छी बहू वह दीपक लेकर ढूंढ़े तो नहीं मिल सकती।"

× × ×

बाहर गुंडे हंस रहे थे। अक्सर वे ऐसी ही बातें करते हैं जो दूसरों को बदनाम कर सकें। घनश्याम आगे था। वह सुना रहा था कि कैसे शोभा ने उस पर डोरे डालने की कोशिश की थी, पर वह साफ निकल गया।

शोभा ने कहा, "सुनते हो ?"

हरखू चुप रहा।

बाहर से हंसने का स्वर आया। फिर आवाजें आने लगीं ज़हर से बुझी, अपमानजनक, बीभत्स ! कहो भाई हरखू ! रंग जम रहे हैं···

फिर कुत्ते की भौं-भौं की नकल। और फिर कोयल की कुहू-कुहू।

"प्यासी है बिचारी !"

"अब तो भई, बासी कढ़ी में भी उबाल आ रहा है···"

फिर एक गीत की बरसाती नदी आ रही है, हर-हर करती, और

किनारे के पेड़ों, संभलो-संभलो, बहा ले जाएगी···बड़ी छपाका है···

हरखू सिहर उठा। शोभा क्रोध से देखती रही।

"शोभा ! तू गांव में कैसे रह सकेगी ?" उसने पूछा।

"नहीं रहूंगी।"

"फिर क्या करेगी ?"

"मैं चली जाऊंगी। कहीं भी चली जाऊंगी, जहां मुझे कोई नहीं जानता होगा।"

"पर वह कोई जगह भी तो हो ?"

"उनके पास।" शोभा ने अचकचाकर कहा।

"सच कहती है ?" उसे जैसे विश्वास नहीं हुआ सो फिर पूछकर अपने जी का सन्देह मिटा लेना उसने आवश्यक समझा। मन में विचार भी आया कि अगर रमेश ने ठुकरा दिया तो ?

"नहीं ! वहीं जाऊंगी। उनके पास ही।"

वह हांफ-सी गई। स्त्री के लिए यह बात कहना सचमुच कठिन ही कहा जाता है। 'उनके' शब्द को कहते समय अचानक ही शोभा का मुंह लाल हो उठा। उसे वह कहना पड़ा है जो कोई गांव की लड़की अपने बड़ों के सामने अपने मुंह से नहीं कहती।

"रमेश ने नहीं रखा तो ?" हरखू ने पूछा।

"द्वार पर मर जाऊंगी।"

"कहना सहज है।"

"करना भी कठिन नहीं।" शोभा ने कहा, "और कोई चारा हो तो मानुस विचार भी करता है। मैं बम्बई जाऊंगी।"

हरखू को यथार्थ का ज्ञान था। बम्बई पहुंचना भी सरल था पर शोभा के लिए नहीं। कहा, "पर तू गांव की लड़की शहर कैसे जाएगी ?"

"तुम पहुंचा आना।"

"फिर क्या गांव में रह सकूंगा ? लोग न कहेंगे कि कहीं ले जाकर बेच आया शहर में।"

शोभा मुस्करा दी। बात क्रोध करने की थी, पर वह मुस्कराई कि हरखू उसे इतना नादान और निरीह समझता है। जैसे वह बैठी रहेगी।

उसके मुंह में लड्डू भरा है जो वह बात भी न कर सकेगी। उसने कहा, "अच्छा, घबराते क्यों हो। कुछ न सही, मैं आप चली जाऊंगी।"

हरखू हार गया। उसने कहा, "अच्छा।"

"पर डरकर तो तुम उनकी हिम्मत बढ़ा रहे हो," शोभा ने कहा, "चलो, देखूं कोई क्या कह सकता है। मुंह से बहन कहा है तो निबाह नहीं करोगे?"

शोभा गठरी बांधने लगी। हरखू पता समझाने लगा। आखिर गांव में ही रहना था। शोभा तो जा ही रही है। फिर किसलिए सबसे बिगाड़ करे! बहाने बनाने लगा, नहीं, वह डरता नहीं। उसकी स्त्री बीमार थी वरना वह स्वयं पहुंचा आता। स्वयं उसकी स्त्री को शोभा पर सन्देह है, यह उसने दबी ज़बान से ज़ाहिर किया, जो नीबू की खटाई की तरह शोभा के दूध-से उबलते हृदय को फाड़ गया। उसने नोट चोली में रख लिए।

जब वह बाहर निकली तो वह कठोर दिख रही थी। दिन दुपहर की बेला में वह स्टेशन की ओर मुड़ी। किसी का साहस न हुआ कि बोले। केवल पीछे से एक आवाज़ सुनाई दी, "चल दी चमको? अब शहर आबाद करेगी?"

शोभा का मन किया, कहनेवाले का मुंह नोच ले। पर फिर चुप रह गई। राह में चन्द्रकला ने टोका, "चल दी क्या? शहर?"

"हां। क्यों?"

"कुछ नहीं, पूछती थी।"

"पूछ लिया?"

"ऐ लो, तुम तो लड़ती हो। मैंने कहा, शहर बड़ा खतरनाक होता है। औरतों की तो पूरी आफत ही समझो, और अकेली जवान औरत..."

"शायद," शोभा ने तड़पकर कहा, "अपने पति के रहते भी तुम पर इतनी मुसीबतें पड़ी थीं वहां कि उसे छोड़ यहां आ गई हो? यहां तो तुम्हें कोई खतरा नहीं!"

चन्द्रकला का मुंह ज़रा-सा निकल आया। शोभा स्टेशन की ओर चल दी।

9

स्टेशन का छोटापन भी शोभा को डराने लगा। गठरी लेकर वह तीसरे दर्जे के जनाने डिब्बे में बैठ गई। उस समय भी उसका हृदय अनिश्चित था कि वह क्या कर रही है। वह ठीक है या नहीं? कहां जा रही है?

किन्तु गाड़ी जब चल पड़ी तो द्विविधा बन्द हो गई। स्टेशनों पर अनेक पुरुष दिखाई देते। उन्हें देख शोभा का दिल कांपने लगा। पराये मर्दों को देखकर घरों में बन्द रहनेवाली स्त्री देख-देखकर ऐसे डरती हैं जैसे लकड़-बग्घों को देखकर लोमड़ी। यदि वह चाहे तो अपने कौशल से सबको यथोचित स्थान पर रख सकती है।

गाड़ी रुकी, शोभा ने पूछा, "बम्बई कितनी दूर है?" सुननेवाली ने कहा, "यही तो है।" तो शोभा लाचार हो गई। वह गठरी लेकर उतर गई।

अब उसके सामने एक नई चिन्ता खड़ी हो गई। यह विराट स्टेशन। हलचल और भीड़। वह जब बाहर आई, गाड़ीवालों को देखकर उसने सोचा कि इनमें से एक को तय कर लेना ठीक होगा वरना वह भटकती फिरेगी। शोभा चुप खड़ी रही। किसके पास जाए, किसी युवक को देखती तो उसको विश्वासपात्र बनाने से डरती। अंत में वह एक बूढ़े के पास गई।

बूढ़ा बात करने लगा। पूछा, पता जानकर कहा, पहुंचा देगा, दाम पूरे लेगा! शोभा ने ढाई रुपया भी स्वीकार कर लिया। विराट अट्टालिकाओं के बीच से जब गाड़ी भीड़ों में से निकलने लगी, उसे कहीं भी पथ का ओर-छोर दिखाई नहीं दिया। कितना विस्तृत है सब? कितने धनी होंगे ये जो यहां रहते हैं? और शोभा का साहस टूट गया। क्यों आ गई है वह बिना सूचना दिए? क्या वह उसका स्वागत करेगा? मन किया गांव लौट चले। वहां यह भय तो नहीं।

पर कौन सहारा है वहां? किसको अपना कह सकती है?

और जीवन के मोह ने कहा, ठहर नादान, एक बार चलकर तो देख।

शोभा सोचती रही। संभव है रमेश को दया आ जाए। युवती होने

पर भी उसे यह आशा नहीं थी कि वह उसके रूप पर भी मोहित हो सकता है। गांव के लोग उसे सुन्दरी कहते थे। परन्तु रमेश की दृष्टि में एक गहरी उपेक्षा थी। जब-जब वह उसकी याद करती, उसके हृदय में एक अजीब-सा भय पैदा होता।

फिर शोभा कहती—नहीं, वह इतने कठोर नहीं हैं। वे क्या जानते नहीं कि उनके अतिरिक्त मेरा इस संसार में कोई नहीं है? वे ही तो मेरे पति हैं। सगाई का मतलब ही यह है। धर्म भी तो कुछ है इस दुनिया में? कोई अपनी स्त्री को भी छोड़ता है? आखिर वे क्यों छोड़ेंगे?···

जाने कितना आलीशान होगा उनका घर। बहुत रुपये होंगे अब तो उनके पास। जो कहीं धन के घमंड में उसे पहचाना भी नहीं तो वह क्या करेगी? यही किसी मोटर के नीचे आकर जान दे देगी। और फिर वह सोचने लगी, कैसे चलते हैं ये बम्बई के लोग। इतनी भीड़ों में इतनी तेज मोटरों के बीच से कैसे सफाई से इधर-से-उधर निकल जाते हैं। शोभा जाए तो कभी भी किसी गाड़ी के नीचे आ जाए।

और उन विशाल सड़कों को देख-देखकर उसे एक अजीब-सी सनसनाहट का अनुभव होने लगा जिसे वह स्वयं भी नहीं समझ सकी।

गाड़ी चलानेवाला अब कुछ गा-सा रहा था धीमे-धीमे। कभी वह घोड़े पर चाबुक फटकारता। सच, बूढ़ा बहुत बातूनी था। दुनिया-भर के बंबई के चारसौबीसों के किस्से सुनाता रहा, जिनको सुन-सुनकर शोभा का मुंह भय से पीला पड़ गया।

अन्त में उसने गाड़ी रोक दी। भाड़ा चुकाकर, डरती-डरती, गठरी उठाए, गाड़ी में से आखिर शोभा उतरी। यह एक बाड़ा था। उसका पुराना रूप अब भी वैसा ही था जैसे पहले। बाड़े में घुसते ही उसे एक आश्वासन-सा हुआ। यहां सब दरिद्र ही हैं। किसी के मुख पर गर्व नहीं, यह देखकर उसे चैन आया।

एक अधेड़ स्त्री सामने आई।

"किसे पूछती हो?" उसने पूछा।

शोभा सकते में पड़ गई। क्या कहे? फिर कहा, "वे रहते हैं न यहां ···वे पढ़ते थे कालेज में···"

अन्त में अधेड़ स्त्री समझ गई।

"रमेश बाबू को पूछती हो ?" उसने पूछा।

"हां-हां।" शोभा मुस्कराई।

"बेटी, वे तो चले गए। मां मर गई, तब ही से चले गए। कहीं पता नहीं जाने कहां होंगे।" स्त्री ने लाचारी से कहा।

शोभा रोने लगी। अब वह क्या करे ? कहां जाए ? और यह बम्बई !

स्त्री को दया आ गई। उसने उसके सिर पर हाथ फेरा। कहा, "तुझे छोड़ गया निर्दयी। चांद-सी है तू तो, अच्छा रोओ नहीं। मेरे घर सो रहो।"

हाल की बला तो टली। स्त्री ने रोटी भी खिलाई और सोने को चटाई भी डाल दी, पर शोभा को रात-भर नींद नहीं आई। तरह-तरह के विचार आते रहे।

सुबह उठी तो आंखें सुर्ख थीं।

"सोई नहीं ?" स्त्री ने पूछा।

शोभा ने कहा, "नींद नहीं आई। वे तो चले ही गए।"

"तो फिर ?" स्त्री ने कहा, "यह बम्बई है। यहां जीना क्या कोई आसान बात है ? अब तू क्या करेगी ?"

"नौकरी।" शोभा ने कहा।

स्त्री ने बम्बई की लोलुपता का अखण्ड चित्रण किया। यहां पुरुष के सामने स्त्री एक खिलौना मात्र है और कुछ भी नहीं। स्त्री का वह वर्णन बढ़ता ही गया और शोभा सुनती रही। और जब स्त्री ने बात समाप्त करने की इच्छा न रहते हुए भी समाप्त कर ही दी, तो वह डर गई। पर और कोई चारा नहीं था।

वह बाड़े के बाहर निकली तो हृदय धक-धक कर रहा था। शोभा बार-बार इधर-उधर देखती जा रही थी। एक बाबू साहब पतलून की जेब में हाथ डाले खरामा-खरामा चले आ रहे थे, पान चबाते हुए। उनकी दृष्टि शोभा पर पड़ी।

शोभा ने मुड़कर देखा तो वह सहमकर पार्क की ओर मुड़कर चलने

लगी, और पीछे भी देखती रही। बाबू साहब समझे, पार्क में आने का इशारा कर रही है। लपककर रफ्तार तेज़ कर दी। 'कौन है, क्या है' से उन्हें मतलब नहीं, वे तो बस देखते थे कि है यह एक औरत ही। टैक्सियां भाग रही थीं। शोभा घबराने लगी। दो बार गाड़ियों के नीचे आते-आते बची।

बाबू साहब करीब आ रहे थे। शोभा भाग चली। उसकी समझ में ही नहीं आया कि वह क्या करे।

शोभा चिल्लाकर सामने से आते एक आदमी के पांव पर झपटकर गिर गई और रोते हुए पुकार उठी, "बचाओ, बचाओ! मेरे पिता हो, मैं अकेली हूं, यह···यह आदमी, मुझे बचाओ, बचाओ···"

"कौन है ?" आनेवाले ने गम्भीर स्वर से कहा। उसने पहले स्त्री को देखा। वह एक युवती थी। यह प्रोफेसर होल्कर था। पीछा करनेवाला आदमी पास आ गया था।

"तुम क्यों इसका पीछा कर रहे हो ?" प्रोफेसर ने पूछा। उसका कठोर स्वर फिर उठा, "और एक अकेली औरत देखकर तुम उसे छेड़ते हो? तुम्हें शर्म नहीं आती ?" अचानक वह चिल्ला उठा, "पुलिस ! पुलिस !"

शोभा ने कांपते हाथों से प्रोफेसर का पैर और कसकर पकड़ लिया।

"अरे बाबा, मैं छेड़ कहां रहा हूं ?" उस आदमी ने घबराए स्वर से कहा, "यह तो मुझे खुद बुला रही थी।"

पुलिस का सिपाही डंडा घुमाता हुआ पास आ गया। उसकी मूंछें चढ़ी हुई थीं। कड़कड़ाकर बोला, "तो क्या कर रहे थे ?"

"मैं···मैं···" आदमी हकला गया।

"चल थाने में, सारी मैं-मैं वहीं निकल जाएगी।" सिपाही ने उसे पकड़ लिया।

"अरे बाबा," उस आदमी ने कहा, "मैं तो इसे फिल्म की हीरोइन बनाना चाहता हूं।"

"और," सिपाही ने उसे धकेलकर कहा, "मैं तुम्हारा राशनकार्ड बन-

वाना चाहता हूं ।"

सिपाही के चले जाने पर शोभा ने सिर उठाकर अपने उपकारी की ओर देखा।

"तुम कौन हो ?" प्रोफेसर ने पूछा ।

शोभा उत्तर नहीं दे सकी । वह सोचने लगी । केवल आंखों से दो बूंद आंसू नीचे गिरे । प्रोफेसर को लगा, वह सचमुच दुखिया थी । उसने धीरज बंधाया, आश्वासन दिया । अन्त में शोभा ने कहा, "बाबूजी ! मैं अकेली हूं। नौकरी ढूंढ़ने आई हूं ।"

"नौकरी !" प्रोफेसर ने कहा । मेहनत करके खाना चाहती है, उसने सोचा, तब तो इसमें सम्मान है । कहा, "अच्छा तो चलो मेरे साथ ।"

शोभा ने कातर दृष्टि से देखा।

"डरो नहीं बहिन···" प्रोफेसर ने कहा, "विश्वास करो । बम्बई में आदमी भी हैं । सब ही को पशु मत समझो ।"

शोभा उसके साथ चल दी ।

10

प्रोफेसर होल्कर का दिल बढ़ा हुआ था । एक अबला का उद्धारक, उसके मन में गर्व पैदा कर रहा था । वे प्रसन्न दिख रहे थे ।

किसी की ऊंची पतंग उड़ती देखकर जैसे कोई सोचने लगे कि इसकी डोरी हत्थे पर से कट जाए, यही हाल उनको निहार अरुणा का हुआ ।

"यह कौन है ?" पूछा । रूखे स्वर की बात सुन प्रोफेसर चौंके । अरुणा चम्पई साड़ी पहने थी और वह खाना बना रही थी ।

"एक अनाथ लड़की है ।" धीरे से कहा ।

"तो यहां क्या नाथ प्राप्त करने आई है !" अरुणा ने तेज स्वर से उत्तर दिया । प्रोफेसर होल्कर कुछ झेंपे । शोभा खड़ी थी ।

"एक वेभासरा लड़की है।" प्रोफेसर ने फिर वात सरकाई।

"तो यह क्या विधवा आश्रम है ?" अरुणा ने चिकोटी काटी।

शोभा ने सुना तो धरती घूमती दिखाई दी। स्त्री अपने पति से प्रायः संसार में इतना अधिक प्यार करती है कि पुरुष उसकी समर्थ प्रीति की गहराइयों और ऊंचाइयों को कभी प्राप्त नहीं कर पाता। स्त्री अपने पति की वुराई सुनकर चुप रह जाने का मुलाहज़ा तो स्वीकार ही नहीं करती। उसने पांव पकड़कर कहा, "ऐसा न कहो वहूजी! मेरा तो आदमी अभी जीता है।"

"जीता है ?" अरुणा चौंकी। सिर हिलाया जैसे अव समझी और फिर कर्कश स्वर से पूछा, "तो कहां है ?"

शोभा चुप हो गई। अरुणा ने आंखें चढ़ाकर घुमाईं।

"छोड़ गया होगा।" प्रोफेसर ने कहा, उदासीन दृष्टि से देखते हुए। उस वात से शोभा को सांत्वना मिली। शोभा ने सिर हिलाया।

"तुम तो इसके इतिहास-भूगोल सव जानते मालूम देते हो," अरुणा ने स्वर को वल देकर कहा, "क्यों री, तुझमें ज़रूर कोई ऐव होगा ?"

स्त्री में एक दोष यह भी होता है कि सहज ही दूसरी स्त्री पर विश्वास नहीं कर लेती। अरुणा की वात से शोभा को ठेस पहुंची। आज वह पराश्रय में वद्ध थी। परवशता को स्वीकार करके कहा, "हां वहूजी! ऐव तो था ही जो इस दुनिया में फूटी किस्मत लेकर आई!"

अरुणा ने कहा, "तो यह वात है? अव समझी। किस वात पर छोड़ गया वह ?" फिर पलटकर पति को सुनाया, "और मर्द सव ही ऐसे होते हैं। कौन है जो सुखी होने का दावा करती है, चौवीस घंटे चौकसी में ही निकल जाते हैं। सव कुछ करो। फिर भी मरो," और शोभा से पलटकर उसने दुधारा चलाकर कहा, "तो तू फूटी किस्मत लेकर इसी घर को उवारने आई है!"

शोभा ने दयनीय दृष्टि से प्रोफेसर को देखा कि तुम जितने भले हो, उतनी ही तुम्हारी स्त्री कर्कशा है। पर अरुणा ने यह भाव पढ़ लिया और उसे यह ज़हर की तरह लगा। उसी के पति से स्त्री आकर उसी की वुराई करके रहे, असम्भव!

"क्या सलाहें हो रही हैं ?" उसने पूछा ।

"तुम्हारा सिर।" प्रोफेसर ने कहा ।

"जानती हूं। यह प्रारम्भ है," अरुणा ने कहा, "ऐसा ही होता आया है।"

शोभा चुप नहीं रह सकी । कहा, "बहूजी, आप क्या कह रही हैं। गरीब हूं, पर इसका मतलब यह तो नहीं कि इज़्ज़त भी नहीं। तब से सुनती चली जा रही हूं ।"

"ऐसी सुननेवाली होती तो गांव में ही सबकी सुनकर न पड़ी रहती ।"

"भगवान ने हाथ-पांव दिए हैं तो कमाकर क्या नहीं खा सकती ?"

अरुणा ने सिर हिलाया। कहा, "क्यों नहीं ? आजकल बहुत-सी औरतें बिना हाथ-पांव हिलाए भी मज़े में रहती हैं।"

प्रोफेसर इस दृश्य को देखकर बहुत उदासीन हुआ। उसी की बात इतनी बेसुरी हो सकती है, उसे आशा न थी । कहा, "औरत औरत की सबसे बड़ी दुश्मन होती है ।"

प्रोफेसर समझा था कि शायद यह बात अरुणा में सहानुभूति को जन्म देगी। पर यह भी उसकी भूल प्रमाणित हुई। अरुणा के होंठों पर विद्रूप नाचा और उसने अपने ही स्वर में कहा, "और मर्द औरत का सबसे बड़ा हमदर्द होता है। कुछ तुम ही निभाओ न ?"

प्रोफेसर तिलमिला गया। क्या करता। वह झल्ला उठा, "देखती नहीं हो, एक अबला दुःख में है। तुम इतनी स्वार्थिन होगी ऐसी तो मुझे कल्पना भी नहीं थी," और निष्कर्ष निकालकर कहा, "तुम तो बिलकुल ऐसी हो जैसा किताबों में लिखा रहता है।"

अरुणा हंसी। कहा, "पढ़ी नहीं होती तो बेवकूफ बन गई होती, समझे ? एक औरत, जब दूसरी औरत आती है, तो उसकी तुलना में पुरुष को कभी पहले भी अच्छी लगी है कि अब से लगने लगेगी।" बात को जहां [illegible] तहां छोड़कर अरुणा ने कहा, "वह तो सब ठीक है, एक बात पूछती हूं। इसे तनखा कहां से देंगे ?" प्रोफेसर ज़रा ठिठका तो वह तुरन्त ही हाथ हिलाकर बोली, "हमारे यहां जगह नहीं है।"

"यह सच है," प्रोफेसर ने कहा, "हमारे पास उतना धन नहीं है। तुम्हें क्या तनख्वाह दे सकेंगे हम ?"

"बहूजी ! रूखा-सूखा मिल जाए, यहीं पड़ी रहूंगी।" शोभा ने कहा। कहने का अर्थ था कि रुपयों की भूखी नहीं हूं, मुझे तो आसरा चाहिए।

"और तनख्वाह भी नहीं लेगी ? न बाबा, हमें तुझे नहीं रखना है।" अरुणा ने बात को दूसरी ही ओर मोड़ दिया। शोभा का मुंह लाज से लाल हो गया। प्रोफेसर ने नीचे का होंठ काट लिया और वह बड़बड़ाया, "भगवान ! तेरी लीला भी बड़ी अजीब देखी गई है। औरत में अगर यह जलन का ऐब न हो तो वह लाख रुपये की होती है। चल तुझे," उसने शोभा से कहा, "कहीं और नौकरी दिला दूं।" फिर सोचकर कहा, "पर यह समस्या तो हर जगह होगी। चलो, फिर भी कोशिश की जाएगी।"

प्रोफेसर की ईमानदारी अब अरुणा की समझ में आई। उसने सचमुच ज्यादती की है। पर अब वह धनुष को बहुत अधिक झुका चुकी है। उसे सीधा करने में प्रत्यंचा टंकारेगी अवश्य। कहा, "तुम कहां चले ? ऊंघते को ठेलने का बहाना।"

प्रोफेसर खड़ा हो गया। अरुणा को घूरा। वह हंस दी। प्रोफेसर शरमा गया। इतनी देर की झुंझलाहट, एक नई स्त्री के सामने, अन्त में प्रेमकलह बनकर प्रकट हुई। यह बात उसे लज्जित करने को काफी थी। वह भीतर चला गया। शोभा अरुणा के पास बैठ गई। उसने अनुभव किया कि पति-पत्नी के बीच में स्नेह के कितने ही अदृश्य बंधन होते हैं जो वैसे भले ही दिखाई नहीं देते हों।

× × ×

प्रोफेसर के कॉलेज चले जाने पर अरुणा दूसरी ही स्त्री दिखाई दी। वह बड़ी हमदर्द थी। उसने शोभा से सब कुछ पूछा। शोभा ने रमेश के नाम के अतिरिक्त सब कुछ बताया। अरुणा ने कहा, "बड़ा निर्दयी था।"

परन्तु शोभा ने कहा, "निर्दयी नहीं थे। परेशान थे।"

अरुणा ने देखा, उसकी बुराई नहीं सुनना चाहती। वह चुप हो गई। उसने शोभा को नहाने को कहकर उसे एक पुरानी साड़ी दी। उसकी मैली

साड़ी धुलवाकर सूखने डाली। सूखने पर कहा, "उठाकर रख।"

खाना खिलाया। पुरुषों के बारे में सतर्क रहने का उपदेश दिया। सब तरह से पुरुषों के विरुद्ध भड़काया। बस इतना ही कहने की कसर रह गई कि स्त्री-राज्य अलग बसा लिया जाए। वह मध्यवर्गीय स्त्री थी। उसकी स्त्री-स्वातंत्र्य की भावना का अर्थ पुरुष से प्रतिस्पर्धा थी। वह समान आर्थिक अधिकारों की मांग न थी, उसका केवल अर्थ था कि पुरुष गधे की तरह लादी लादे, कमाए, बीवी को लाकर रुपये भेंट करे। बीवी अपने, अपने पति पर सब स्वाहा करे। यहां तक कि पति की मां को भी सह न सके। अजीब थी यह दुनिया और अरुणा उसी की प्रतिनिधि थी।

गांव में रहकर शोभा के विचार सामंतीय परम्परा के थे कि पति ही सब कुछ है। वह कभी बराबरी की न सोचती थी, न उन विचारों को ही पसन्द करती थी जो ऐसी बातें कहते थे। उसकी दृष्टि में यह कुलटाओं का काम था। जो मर्दमार लुगाइयां होती हैं, उन्हीं के विषय में उसने ऐसी बातें अभी तक सुनी थीं।

फिर अरुणा लड़ाई की महंगाई के रोने में लग गई। कोयला मिलता तो है पर महंगा है। महंगा क्या नहीं है? कुछ समझ में नहीं आता, इतनी-सी तनख्वाह में कैसे सब काम चलेगा?

इस समय अरुणा कुछ और थी। अब वह गृहिणी थी, जिस पर सारा बोझ रखा हुआ था। गृहस्थी का बोझ साधारण नहीं होता। उसे स्त्री ही जानती है क्योंकि वही उसे खींचती है।

शोभा सुनती रही।

"अच्छा," अरुणा ने कहा, "तुझे काम चाहिए?"

ममता! अचानक उसे याद आया। वहां क्यों न जाया जाए?

"चल मेरे साथ।" उसने कहा।

शोभा उठ खड़ी हुई। उसकी आंखों में कौतूहल था।

× × ×

वे दोनों ट्राम में चढ़ीं। फिर दुमंज़िली बस में। अरुणा तो लपककर चढ़ गई पर शोभा के घुटने में लग गई। अब वे ममता के घर पहुंचीं। शोभा का हृदय डर रहा था। ममता ने देखते ही कहा, "अरुणा!" स्वर

में कृत्रिम उल्लास था। शोभा समझी सच्चा स्नेह है। पर अरुणा समझ गई।

"बैठो न ! बहुत दिन बाद आईं।" ममता ने कहा।

वे बैठ गईं।

"घर से फुर्सत ही नहीं मिलती।" अरुणा ने कहा। फिर इधर-उधर की बातें होती रहीं। बहुत दिनों की बातें इकट्ठी हो गई थीं और स्त्रियां बात भी कुछ अधिक ही करती हैं।

मालती आई। अरुणा ने उसे देखा तो चौंकी। पहले कभी देखा नहीं था। चुपचाप क्षण-भर देखती रही। फिर देर न की जा सकी। पूछ ही तो बैठी, "क्यों ममता ! पहले तो देखा न था। यह कौन है ?"

"नौकरानी है।" ममता ने कहा।

अरुणा का मुंह फीका पड़ा। तो शायद अब अपनी दाल नहीं गलेगी। अपना काम करके जब मालती चली गई तो अरुणा ने बात शुरू की।

"यह नौकरानी लाई हूं।" उसने कहा, "अपनी तो हैसियत नहीं, पर बिचारी गरीब है।"

ममता ने एक दृष्टि डाली। कुछ भी नहीं पूछा। भीतर की ओर मुंह करके सधी हुई आवाज दी, "मालती !"

"जी आई।" उत्तर आया और मालती भी।

"देख, इसे काम बता दे। नई आई है। खाना पका लेती है ?" उसने शोभा से पूछा।

शोभा सुनती रही थी। अब कहा, "खूब पका लेती हूं। और आपसे सीख भी लूंगी।" मालती शोभा को भीतर ले गई।

"तू बहुत सुखी है ममता ! वहां तो काम ही नहीं चलता। अगर कहीं तू रमेश से शादी कर लेती···" अरुणा ने कहा और वाक्य पूरा भी नहीं कर सकी कि ममता ने हिकारत से मुस्कराकर उसकी बात काट दी, "कौन, मैं ? उस भिखमंगे रमेश से···"

बात आई-गई हो गई।

"अच्छा !" अरुणा ने कहा, "चलती हूं। वे आते होंगे।"

"कभी-कभी याद कर लेना बुरा नहीं होता।" ममता ने मुस्कराकर कहा।

11

अरुणा लौटी तो प्रोफेसर को बैठा पाया। बताया, ममता के छोड़ आई हूं।

"ममता!" प्रोफेसर ने कहा।

"क्यों?"

"वैसे ही कहता था।"

"मुझसे छिपाते क्यों हो?"

"तुमने अच्छा नहीं किया।"

"चलो हटो।" अरुणा ने कहा, "मज़े में रहेगी।"

"औरत वह बहुत सीधी थी और ममता है···"

"चाहे जो हो, स्त्री को स्त्री से क्या डर···"

प्रोफेसर जो कहना चाहता था, वह कह नहीं पा रहा था।

"वैसे," अरुणा ने कहा, "ममता के पास चौकीदार है, और एक नौकरानी और है···हां···" उसने प्रभाव डालने का यत्न किया।

प्रोफेसर ने पूछा, "क्या उसने कहीं नौकरी कर ली है?"

"नहीं।"

"शादी कर ली?"

"नहीं।"

"तो उसके पास इतना पैसा कहां से आता है?"

अरुणा उठ खड़ी हुई। वह जवाब नहीं देना चाहती थी क्योंकि इस बात का जवाब शरीफ घरानों की औरतें नहीं दिया करतीं। प्रोफेसर समझता था। बोला, "और मैं इतनी देर से कह रहा था।"

"क्या तो ?"

"सच कहती हो, तुम नहीं जानतीं ?"

"कुछ कहो भी तो।" अरुणा ने चिढ़कर कहा।

"ममता को तुम जानती हो ?"

"क्यों नहीं ?"

"उसका वाप ऐसा वहुत धनवान तो न था ?" प्रोफेसर ने कहा।

"नहीं।"

"सब जानकर भी अनजान वनती हो। मैं देखता हूं तुम भी वड़े काले दिल की औरत हो।"

पर अरुणा को चिन्ता न थी। कहा, "उसी से मर्द ठीक रहते हैं। नहीं तो क्या हमसे ? हमको तो जूतियों की जगह समझा जाता है।"

"तुम भी वैसी ही हो जाओ।"

"शरम करो। वोलना नहीं आता तो वोलने की जरूरत ही क्या है ? किसी हकीम ने तो वोलने की शर्त नहीं लगा दी है ?"

नारी के विभिन्न रूपों में प्रोफेसर ने उसकी छटपटाहट देखी। वहस करना व्यर्थ समझकर प्रोफेसर चुप हो गया।

पर ममता शोभा को देखकर प्रसन्न हुई। वुलाया। पूछा, "कहां की है ?"

"वीवीजी, गांव की हूं।"

"शादी हुई ?"

"हो गई होती। सगाई हो गई।"

ममता हंसी। मालती से कहा, "ये तेरी वहिन आ गई विलकुल। सम्भाल इसे। वैसे बुरी तो दोनों में कोई नहीं। फिर तुम्हारे मर्दों ने क्यों छोड़ दिया तुम्हें ?"

ममता जव क्लव चली गई, मालती ने शोभा से कहा, "जानती हो यह शहर है ?"

"भुगत चुकी हूं, यहां सव भेड़िये हैं। मुझे प्रोफेसर साहव ने वचाया।"

"अच्छा, एक बात कहूं ?"

"क्या, कहो न ?" जिज्ञासा से शोभा ने पूछा।

"यहां भी सम्भलकर रहना।"

शोभा समझी नहीं। पूछा, "बीबी का ब्याह हो गया ?"

"नहीं।" मालती ने उत्तर दिया।

"फिर कौन कमाई आती है ?"

"यह मैं भी नहीं जान सकी।"

"वह गाड़ी लेकर कौन आए थे ? बीबी के मालिक हैं ?"

"नहीं।" मालती ने कहा।

"फिर ?" शोभा ने चौंककर पूछा।

"मैं नहीं जानती।"

"तुम्हारा ब्याह हो गया ? बच्चे हैं ? सब कहां रहते हैं ?"

मालती हंसी। कहा, "सब आज ही पूछेगी ! तू मुझसे छोटी है न ?"

"बड़ी लगती होऊंगी मैं ?" शोभा ने पूछा।

दोनों हंस दीं। शोभा खाना पकाने लगी। दाल बनाकर मालती से कहा, "जरा चखकर देख ले। ठीक बनी है न ?"

"क्यों, तुझे नहीं आता ?" मालती ने कहा और उसके नेत्रों में सन्देह आया कि कहीं यह भी···पर शोभा ने कहा, "आता तो खूब है। किया ही क्या है। पर बड़े आदमियों के पास कब रही हूं···बीबी गुस्सा तो नहीं होती ?"

"कभी-कभी हो भी जाती है।"

"दाल कैसी है ?"

मालती ने चखकर कहा, "अच्छी है··।"

शोभा प्रसन्न हो उठी। अपने-आप बकने लगी, "यहां तो काम ही नहीं दिखाई देता···।"

12

रमेश का जीवन उस छोटी पूंजी को बड़ा करने में लग गया। 15,000 रुपयों का मालिक बनकर भी उसमें उसे खर्च कर डालने की नीयत नहीं हुई। पहले तो उसने छोटे व्यापारियों को, माल रखकर रुपया सैकड़ा ब्याज पर धन बांटा। बहुत शीघ्र ही कुछ दिन फिरे, क्योंकि उतार-चढ़ाव इस सामाजिक व्यवस्था का धर्म ही है, उसने सोना दाब लिया। पन्द्रह के बीस हज़ार हो गए। एक छोटा रोज़गार ढूंढ़ निकाला और शीघ्र ही बीमा कराके आग लगा दी। एजेण्ट को रिश्वत दी और बीस के बीस बना लिए। यह दानव के पुत्र का सा धन बढ़ने लगा।

दो पांव चल रहे हैं।

चलते-चलते कुछ सीढ़ियां सामने आ गईं। रमेश को उन्नति का मार्ग सामने चढ़ता हुआ दिखाई देने लगा। अब वह दूसरे क्षेत्र में आ गया। गोशाला को उसने एक लाख का चन्दा लिखा। उसकी गद्दी का नाम लोग जान गये। वड़ी पार्टी समझकर सेठों ने माल का आर्डर बुक कराया। रमेश ने एडवांस लिया और एक जहाज़ खरीद लिया। पूरा मुनाफा रहा। रमेश लाखों में खेलने लगा।

दूर से वह शरीर छोटा दिख रहा था, पर उसमें अदम्य उत्साह था। वह ऊपर चढ़ना चाहता था। धन की हवस, यश और स्त्री की हवस से भी बड़ी होती है; क्योंकि यश और वासना के सबसे जघन्य रूप भी धन की तृष्णा के सामने बौने साबित होते हैं। रमेश नित्य नई तरकीबें सोचता। उसने किरायेदारों को ढूंढ़ा। ज़मीन खरीदी। एक लाख लगाकर घर बनवाने प्रारम्भ किए। किरायेदारों से एडवांस लिया। जब इमारत बन-कर खड़ी हुई, उसने चार महीने में एक लाख लगे हाथों बचा लिए थे। पांव सीढ़ियों पर चढ़ने लगे।

पैसा पैसे को कमाता है। पूंजीवादी सभ्यता गद्दे-तकियों पर लेटने वाली वेश्या के समान है। जब वह पैसा नहीं रखती तो पत्थरों पर लेटती है। तब पैसा भी कम आता है। रमेश ने बिलकुल ही कठोर जीवन अपना लिया। एक आदमी से पार्टनर बनकर एक कम्पनी बनाई। अफसरों को

रिश्वत देते हुए मित्र पकड़ा गया। रमेश ने उसे जेल में सड़ने दिया; सरकार को हरजाना देकर कम्पनी फेल कर दी। इसमें उसे मुनाफा काफी हुआ। इस जीवन के निविड़ अंधकार के बीच ममता के शब्द गूंज उठे—'चलूंगी, पर कहीं तुम्हारा ठिकाना है ? याद रखो जहाज़ के तैरने के लिए समुद्र चाहिए...'

उससे अदम्य प्रेरणा आती। जब वह ममता की सोचता, उसका शरीर ताप से भर जाता। वह इस समय व्यापारी की भांति सोचता। मैं उसे खरीद लूंगा। एक फिल्म कम्पनी फ्लोट की। अपना एक लाख बैंक में दिखाया। डिस्ट्रीब्यूटर्स से बाकी रकम ली। चित्र बनाया। आशातीत लाभ हुआ। और पांव बढ़ रहे थे, निरन्तर बढ़ते जा रहे थे...

रमेश ने वह लाइन भी छोड़ दी। इस जीवन में उसे नगर की वेश्याओं और एक्ट्रेसों से साबका पड़ा। उन स्त्रियों को उसने ऐसा फेंका जैसे दूध पीकर कोई पत्थर पर कुल्हड़ तोड़ देता है। इस समय तक वह पचास लाख का मालिक हो गया था। किंतु उसे इसमें अन्त नहीं दिखाई दे रहा था।

पूंजीवादी समाज में मनुष्य का उत्थान वास्तव में उसका चारित्रिक पतन है। वह जितना ही धन के कारण सम्मान पाता है उतनी ही उसकी आत्मा मरती जाती है। लालच की मिट्टी डालकर वह अपनी आत्मा की लाश को ढंकता जाता है ताकि वह भीतर ही सड़ती रहे, बाहर बदबू न दे।

रमेश की राह पर कांटे भी थे, क्योंकि लाश फाड़कर खानेवाले सब हिंसक पशु एक-दूसरे के मित्र नहीं होते। ब्लैक से रुपया आया, आया और फैला। पर सरकार को युद्ध के लिए टैक्स चाहिए था। और समस्या भी सुलझ गई कि रमेश ने टैक्स को दबाकर युद्ध-फण्ड दे दिया, बाकी रिश्वतें दे दीं। पर उसके पास ब्लैक का धन था, उसे यह लगाता कैसे ? उसने स्टाक एक्सचेंज में सट्टा बाज़ार के बड़े एजेण्ट को दो लाख रुपये देकर अपनी रकम को सट्टे की कमाई कहकर रजिस्टर में चढ़वा दिया।

अब कानून साथ था। कोई भी उसका कुछ नहीं कर सकता था।

× × ×

थकान से बोझिल पांव अब फिर चढ़ रहे थे।

थककर ऊपर देखा, अब भी अनेक सीढ़ियां शेष थीं।

वह सट्टा बाज़ार था।

इस बार सट्टे में उसे अचानक ही लाभ हुआ। उससे कारोबार बहुत बढ़ गया।

और सीढ़ी के ऊपरी भाग पर रमेश ने पहुंचकर देखा तो वह करोड़ों में खेल रहा था। अब उसके मदमत्त जीवन का ताण्डव प्रारम्भ हुआ। पहले जो रमेश अपने स्वाभिमान की चिन्ता करता था, अब वह आवश्यकता से अधिक नम्र हो गया। सबसे मीठा बोलता, पर अपने कर्मचारियों से उसने कभी कड़ी बात न कहकर भी कभी प्रेम से बात नहीं की। वे सब उससे डरते थे। और रमेश में एक नई चेतना आई। उसने कम्युनिस्टों के पत्रों का गहरा अध्ययन आरम्भ किया। वह ऐसी तरकीबों से फोर्ड की भांति मज़दूरों में घुलने-मिलने लगा कि शीघ्र ही 'इण्डियाज़ होप' नामक कन्सर्न का नाम व्यापार-जगत् में फैलने लगा। फिर भी रमेश ने अभी अपने को प्रसिद्ध नहीं किया।

अब रमेश बादलों में सिर उठाकर हंसा। उसका दृश्य अहंकार अब हंसा। अपने व्यक्तिगत जीवन के इस संतोष ने उसके मस्तक को उठा दिया। पर पूंजीपति और सामन्त में भेद होता है। सामन्त सिर उठाकर अकड़ता है। पूंजीपति हाथी की तरह अपने ही सिर पर अपनी ही सूंड से धूल डालता रहता है। बड़ी-बड़ी मिल की चिमनियां धुएं के अंगार उगलने लगीं। उनसे आकाश पर कालिमा छाने लगी। वह मनुष्य की अपराजित दुर्दमनीय शक्ति मशीनों का वह ही दुष्प्रयोग था, जैसे स्त्री को बाज़ार में बेचा जाता है। पर उन चिमनियों की ओजस्वित पुकार सुनकर मज़दूरों की रोटी हलक में अटक जाती और वे मिलों की ओर ऐसे भागते जैसे उनके पैरों में से धरती खिसक गई थी।

नीचे, बहुत नीचे ··· धुंधलके में लाखों मज़दूर, उन चिमनियों के अन्धकार में चग-चग पट-पट करती मशीनों के अनवरत निनाद में रूई की उड़ती धज्जियों को फेफड़ों में भरते, काम करते, तपेदिक उगलते। विदेशी सरकार उन्हें युद्ध के नाम पर बांधती, राष्ट्रीयता के नाम पर रमेश।

और इस प्रकार प्रचंड शक्ति को अन्धा करके नचाया जाता रहा।

भिखारियों की पांत दिन और रात रमेश के घर पर जुड़ती। उन्हें अन्नदान दिया जाता। नंगे भिखारी और नंगी-सी भिखारिनें गला फाड़-फाड़कर आशीर्वाद देते। मिलों में, कारखानों में इन्सान को पीसा जाता, गरीबी बढ़ाकर भिखारी पैदा किए जाते, क्योंकि वैभव चाहता था कि उसके यश के लिए दान लेनेवाले पैदा हों।

उधर शोभा झाड़ू से पानी डालकर फर्श धो रही थी। उसका जीवन कितना छोटा था। वह नहीं जानती कि संसार में एक संसार दूसरे पर शासन करता है। जीवन की विषमताएं व्यक्तित्वों में नहीं, व्यवस्थाओं में हैं। सीधी-सादी-सी एक ज़िंदगी। खाया, सोये, काम किया, बातें कर लीं। मालती से उसकी खूब पटने लगी थी। वह फर्श धो रही थी तो मालती ममता के कपड़ों पर लोहा कर रही थी। वह सारी ज़िंदगी दूसरों की सिकुड़नों को मिटाने के लिए ही हाथ में शायद गर्म लोहा लिए पसीने से तर-बतर खड़ी रहेगी और कभी भी शायद वह तह किया हुआ कपड़ा नहीं पहन सकेगी जो सौन्दर्य की अभिवृद्धि करता है। उसका स्वप्न पतंगे का स्वप्न है। वह नित्य देखती, सहमती कि ममता और बिहारीलाल क्लब में नाच रहे थे और नाचकर वे घूमने चले गए। ममता के पास धन की कमी नहीं। ममता का नारीत्व ऐसा जैसे बुलबुलों से भरी सोडे की बोतल। उसकी शक्ति जैसे कभी हार नहीं मानती। दिन-रात श्रृंगार में लगी रहती।

शोभा को जब काफी समय मिलता तो अरुणा के पास जाती।

उस दिन शाम को पहुंची तो द्वार खुला था। भीतर चली गई। कमरे में प्रोफेसर होल्कर पढ़ रहा था। अरुणा ट्रे में चाय लाई थी। जिस क्षण परस्पर वे रुपयों की कमी के कारण झगड़ पड़े थे, यह कोई भी न जान पाया। शोभा लौटी तब उसने कुछ दूर से देखा कि मनोहर भीतर जा रहा था। वह उसे जानती ही नहीं थी, अतः कोई कौतूहल भी नहीं हुआ। पर जाकर मालती को प्रोफेसर और अरुणा की लड़ाई की बात सुनाई और हंसी। कहा, "सुनती हो, मरद से कैसे लड़ती है? किसी से न कहने का वायदा करो तो एक बात कहूं।"

"कह तो।" मालती ने कहा।

"यह पढ़ी-लिखी औरतें," शोभा ने कहा, "धन के पीछे रंडियों की तरह क्यों भागती हैं?" मालती भीतर चली गई। उसका जीवन निराश था। वह ही क्यों, सड़क पर इस समय निराश मनोहर बिजली के खंभे के पास सिगरेट पी रहा था।

लड़ाई है, महंगाई है। लूट है, खसोट है, पर भुखमरी भी है, भींच भी है, मौके की बात है, जिसके हाथ जो पड़ जाए वही भाग्य है।

उसने राहगीर की जेब काट ली। बाबू साहब ऐंठते हुए ही चले गये। मध्यवर्ग के वे सच्चे प्रतिनिधि थे कि जेब कटती चली जाए, पर ऐंठ का दिखावा न छोड़ें।

मनोहर ने पर्स खोला। दो रुपये थे। मनोहर ने आसमान की ओर मुंह उठाकर कहा, "दो के दो हज़ार कर।" और एक ईरानी के यहां जाकर चाय पी, बिस्कुट खाए। तब कहीं जुए की तलाश में निकला।

रमेश फिर हंस रहा था। उसने एक बैंक फेल करके अब की बार डेढ़ करोड़ रुपया बचाया था। एक बैंक खोला और उसे अंग्रेज़ों के हाथ बेचा, एक विलायती बैंक में मिला दिया। शेयर होल्डरों को घाटा आया। पर रमेश के पास उनके विषय में सोचने का समय नहीं था।

रमेश जायदाद बनवाने लगा।

विराट अट्टालिकाएं खड़ी होने लगीं। लोहा और कंक्रीट हवा में पंजे लड़ाने लगे। और जैसे कबूतर फड़फड़ाकर दड़बों में घुसते हैं वैसे ही अनेक स्त्री-पुरुष उनमें घुस गए। एक-एक कमरे में दस-दस आदमियों के परिवार। उसी में रात को मां-बाप सोते हैं, वहीं बेटा-बहू दूसरे कोने में सोते हैं। और लोगों को इस घृणित व्यवस्था की ऐसी आदत हो गई है कि यह सब न्याय समझा जाने लगा है। उन इमारतों ने मनुष्यों को चबाया। उन आदमियों की हड्डियों को निरन्तर उठती खाने की बास ने चूस लिया, हां वे रुपये उगलने लगे। रमेश ने उन्हें भी बटोर लिया।

रमेश गम्भीर-सा उस विशाल भवन के हॉल में पाइप जलाए घुसा। फिर वह ड्राइंग रूम में आ गया। उस समय उसके मस्तक पर भव्य शांति

थी।

बैठकर उसने एक सांस ली। आज वह कोई व्यापारियों की बहुत बड़ी मीटिंग में बैठकर आया था। थक गया था।

एक क्लर्क घुसा। उसने झुककर सलाम किया। रमेश ने उसे देखा।

अब व्यवस्था अपने नियम पर आ गई थी। पहले एक तरफ दांत थे, अब दोनों तरफ उग आए थे। वे दांत एक-दूसरे में उलझते हैं, लोहे का पट्टा अपने-आप घूमता है। अब रमेश उस सबसे दूर बटन के पास बैठा है। दबा दे तो सब चल पड़ें। बुझा दे तो सब शांत हो जाएं।

"क्या है?" उसने कहा।

"सेठजी, गुड़ खरीद लिया है।"

"हूं।" उसने कहा। क्लर्क चुप रहा।

"कपड़े की गांठें?" रमेश ने पूछा।

"जी, उनका भी सौदा किया जा रहा है।"

रमेश ने सिर हिलाया। क्लर्क सलाम करके चला गया। रमेश ने एक अंगड़ाई ली। तभी टेलीफोन की घंटी बजी। रमेश ने हाथ बढ़ाकर फोन उठाया और कान पर लगाया। आवाज़ आने लगी।

"कौन, मैनेजर? हां, अच्छा। देखो, बेचो मत।" रमेश ने धीरे से कहा। फिर कुछ आवाज़ बढ़ाई, "क्या कहा? ब्लैक मार्केट?" वह हंसा और फिर सहसा ही आवेश से उसने ज़ोर देकर कहा, "यह गलत है मैनेजर! हमें अपने शेयर होल्डर्स का खयाल रखना है।" इस बात को कहते हुए उसके होंठों पर एक व्यंग्यभरी मुस्कराहट थोड़ी देर कांपती रही और उसने सहज ही कहा, "हम उसी भाव बेचते हैं जैसे बाज़ार होता है···" फिर वह कुछ देर तक भनभनाती आवाज़ सुनकर बोला, "यह भी कोई बात है कि मैं बाज़ार भाव चढ़ाता हूं। अगर मुझे नुकसान है तो मैं इसी वक्त क्यों बेचूं?" फिर हठात् उसका स्वर परिवर्तित हो गया। उस समय वह भी टेलीफोन की भांति लोहे का-सा दिखा, "मैनेजर! तुम अभी कॉलेज से नये-नये ही निकले हो। तुम चुपचाप वह करो जो मैं कहूं।" शायद दूसरी ओर पराजित स्वीकृति अभी नहीं मिली थी, तभी उसकी भृकुटि चढ़ गई, "हां, अगर दाम गिरते नज़र आएं तो कॉटन मिल बन्द

कर दो। अरे, सरकार क्या कर लेगी ? देखा जाएगा। मज़दूर मरेंगे ? भूखे ? तो मैं क्या करूं ?" अजीब-सी झुंझलाहट से जैसे उसने दुहराया, "हड़ताल ! !" दो-चार बार हूं, हूं किया, फिर उसने राय देते हुए होंठ बिचकाकर कहा, "पुलिस को बुला लो।" फिर वह कुछ मुस्कराया और उसने कहा, "नौजवान जोश छोड़ो। मैंने अपना ठेका लिया है, सारी दुनिया का नहीं।" फिर भी भनभनाहट आती रही। रमेश ने पूछा, "तुम्हें नौकरी करनी है ?"

भनभनाहट बंद हो गई। रमेश ने कहा, "और उसका क्या हुआ ?"

उधर से कुछ उत्तर आया। रमेश ने कहा, "ठीक है, ज़रा अक्ल से काम लो।" मैनेजर अक्ल से काम करने को शायद अब पूरी तरह तैयार हो चुका था। रमेश प्रसन्न हो गया और उसने मुस्कराकर फोन रख दिया।

नौकर ने लाकर डाक रखी। रमेश ने चिट्ठियां देखीं। सब व्यापार की ही डाक थी। फिर अखबार उठाया। नया अंग्रेज़ी का दैनिक था।

उसने पत्र खोला। आज वक्त आया है। देखकर मन खिल गया। देखा तो एकटक देखता रहा। आज उसके स्वप्न पूर्ण हुए थे। युगों की अतृप्ति आज मिट गई थी। रमेश ने पत्र बगल में फेंक दिया।

उस अखबार पर उसी का चित्र था।

13

मनोहर ने सड़क पर उस चित्र को अखबार में देखा तो उसे ऐसा आश्चर्य हुआ कि दो नहीं, दस बार आंखें फाड़-फाड़कर देखा, और नीचे लिखी इबारत पढ़ी। परमाद्भुत ! बम्बई में ही रहा। पर जहां वह रहा, वहां गति ही किसकी थी। फर्म का नाम था, व्यक्ति ने अपने को छिपा रखा था। मनोहर को लगा वह रमेश द्वारा मूर्ख बना दिया गया है।

वह प्रोफेसर के घर पहुंचा। आज पहली बार अपनी बात को दूसरे से कहने की इच्छा हो रही थी। प्रोफेसर पढ़ रहा था। पर प्रोफेसर को देखकर यह इच्छा हृदय से जाती रही। आंगन के भीतर साड़ी ऊंची करके अरुणा कपड़े धो रही थी।

"क्या कर रही हो ?" प्रोफेसर ने पूछा।

"कपड़े धो रही हूं।" उत्तर फीका था।

"लाहौल-विला-कूवत ! एक प्रोफेसर की बीवी कपड़े धो रही है ? क्या ज़माना है, वरना हम भी एक ज़माने में रईसों में थे।" प्रोफेसर ने अरुणा को प्रसन्न करने के लिए ऊपरी मन से बात की। मनोहर ने उसी वाक्य का उत्तर देते हुए प्रवेश किया और एक कुर्सी पर बैठकर कहा, "अजी वह ज़माना गया जब खलीलखां फाख्ता उड़ाते थे। अब नौकरी वाले तो यों ही रोते हैं। पैसा तो ब्लैक मार्केट से आता है।"

"साढ़े तीन सौ रुपल्ली में कहीं ऐश नहीं होते," प्रोफेसर ने कहा। बात को जारी रखना परिचित का परम स्वागत है। "जानते हो घर का किराया क्या है ?"

अरुणा को मालूम नहीं हुआ था कि मनोहर आ गया है। वह अपनी ही बकती रही, "तुम्हारे तो सिद्धान्तों के मारे नाक में दम है। तुम व्यापार को ब्लैक कहते हो। बिड़ला सेठ व्यापार करते हैं न ? उनसे देश के बड़े-बड़े नेता मिलते हैं। तुम नेताओं से भी बड़े हो ? दुनिया में सब भले आदमी यही करते हैं।"

अरुणा गुस्से से कपड़े को ज़ोर-ज़ोर से पटक-पटककर धोने लगी।

"अब इसकी धज्जियां उड़ा दोगी तो कल क्या मसहरी पहनकर निकलोगी ?" प्रोफेसर ने फिर उसे डांटा और मुड़कर वह धीरे से मनोहर से बोला, "सच कहता हूं। शादी कभी मत करना। बड़ा खतरा है। औरत का दिल बड़ा कमज़ोर होता है।"

"गलत," मनोहर ने कहा, "बड़ा मज़बूत होता है।"

प्रोफेसर ने आंखें फाड़ीं।

"अरुणा," उसने वाक्य पूरा किया, "इस टुटपुंजिया ज़िन्दगी से ऊब गई है और मैं सिद्धान्तों का पक्का हूं।"

मनोहर ने ऐसे सिर हिलाया जैसे चुप भी रहो, इन बातों में क्या रखा है; उसने हाथ उठाकर कहा, "आपके सिद्धान्त हैं कि आप पैसों के लिए नहीं लिखेंगे, लेकिन पैसा दुनिया की सबसे बड़ी हस्ती है, अरुणा जानती है, वह बहादुर है। आप कच्चे हैं प्रोफेसर साहब!" मनोहर ने भौंह सिकोड़कर कहा, "वह हर अवस्था में सुखी रहना चाहती है, और आप हैं कि फूल तक तो पहुंचते नहीं, हवा को सूंघते रहते हैं।" उसके होंठों पर मुस्कराहट थी, "हिन्दुस्तान का मर्द आसमान का माशूक होता है और औरत धरती की आशिक।"

इस बात को उसने एक दार्शनिक के ढंग पर कहा और घूरकर देखा। प्रोफेसर अचकचा गया था। इतनी कटीली बात मनोहर कह जाएगा, यह उसे आशा ही नहीं थी। तब प्रोफेसर ने बात काटकर कहा, "यार, ज़िन्दगी तो तुम्हारी है। बड़े ऐश से कट रही है।"

"आप मुझे देखकर जल रहे हैं, मैं सड़क के कुत्ते को देखकर जला करता हूं। मैं तो चला···" मनोहर उठा और मुस्कराकर भीतर चला।

"भड़काना मत।" प्रोफेसर ने कहा।

मनोहर मुस्कराता रहा और भीतरी द्वार पर खड़े होकर दोनों हाथों को जोड़कर नमस्ते करके कहा, "कहिए भाभीजी, क्या हो रहा है?"

"कुछ नहीं, ऐसे ही कपड़े धो रही थी।" अरुणा अपने अधगीले कपड़े पहने झुंझलाती-सी उसे देखकर झेंप गई।

"ऐसे ही नहीं भाभी! साबुन से धोया करिए···" मनोहर ने कहा और उसके पास चला गया। अरुणा समझी नहीं।

"अच्छा जानती हो भाभी, रमेश कहां है?" मनोहर ने उससे धीरे से पूछा।

"नहीं तो।" वह बोली।

"बहुत बड़ा आदमी हो गया है वह। मुझे तो अब पता चला। 'इंडियाज़ होप' नाम की कंन्सर्न उसी की है। करोड़पति है करोड़पति···"

"करोड़पति! रमेश···" मनोहर की बात काटकर अरुणा ने आश्चर्य से आंखें फाड़ दीं; मुंह खुल गया।

"कैसे हो गया?" अंत में उसने पूछा।

"वुद्धि से ।" मनोहर ने कहा ।

"एक हम हैं, देख लो कहने को सव है, कुछ कमी नहीं, पर हम ही जानते हैं ।" अरुणा ने कहा ।

"अपना-अपना भाग्य है ।" और एक लम्वी सांस ली ।

मनोहर जव चला तो मन उछल रहा था । मिलेगा भी या नहीं । सेक्रेटरी होंगे अव तो, शायद पूछ ही वैठें—क्यों आए हो ? पर मनोहर ने भी शीशी का दूध नहीं पिया है । वह भी समझेगा आज ।

रमेश दफ्तर में वैठा कागजात देख रहा था, एक टाइपिस्ट लड़की पास खड़ी थी, रमेश हस्ताक्षर कर रहा था । पहली दृष्टि में मनोहर ने देखा कि लड़की सुन्दर थी । और आजकल प्रायः सव वड़े आदमी एक सुन्दरी का सामीप्य पसन्द करते हैं, अपने मनोरंजन को गाहकों के सिर पर लगाकर । "सलाम हुजूर !" मनोहर ने झुककर कहा ।

रमेश ने वहुत ही नपे-तुले ढंग से अपनी पलकें उठाई और दस्तखत करते हुए ही कहा, "ओह, मिस्टर मनोहर ! आइए, तशरीफ रखिए । वहुत दिन वाद नजर आए ?"

"हुजूर वहुत दिन से गायव थे !" मनोहर ने कहा और एकदम चुप हो गया । उसे याद आ गया कि तव और अव में वहुत फर्क है ।

"तुम जाओ ।" रमेश ने हाथ से कागज सरकाकर लड़की से कहा । लड़की कागज ले गई । तव रमेश ने कहा, "हां, अव कहो ।"

"उनके सामने सरकार को मेरी वातें सुनने में एतराज़ था ?"

"एतराज तो नहीं, हां, खैर···"

रमेश के टीन से एक सिगरेट निकालकर मनोहर ने कहना प्रारम्भ किया, "खुशकिस्मती, दिवालिया हो गए । मैंने ढूंढ़ा तो वहुत, पर आप मिले नहीं । खैर, यह भी अच्छा ही हुआ ।" उसने दो लम्वे कश खींचकर धुआं उगला, "वड़ी तरक्की कर ली है यार तुमने ।" फिर धुएं का एक छल्ला उड़ाया और फिर दूसरा उसके भीतर से, कहा, "यह जादू कहां सीखा ?" वह अजीव तरीके से मुस्कराया । यह रमेश को अच्छा नहीं लगा । "तुम गए सो गए और वह मालती भी न जाने कहां चली गई ।"

मनोहर ने अपनी बात को चालू रखा। चुटकी बजाकर सिगरेट का धुआं गिराया। इस समय वह गंवार बन रहा था। पूछा, "तुम्हें उसके बारे में कुछ मालूम है? बड़ी नमकीन औरत थी, हाय···" और उसने तब काबिले एतराज लम्बी सांसें खींचीं, बाहर से भीतर, फिर भीतर से बाहर।

उसकी बेतकल्लुफी से रमेश चिढ़ा। अभी यह कम्बख्त बदला ही नहीं। अपने गौरवानुसार, "नहीं भाई, मुझे कुछ नहीं मालूम।" कह रमेश चुप हो गया।

"बड़े आदमी हो भाई ··" मनोहर ने फिर कहा। अब की बार उसके स्वर में एक हल्का-सा व्यंग्य भी था, "गरीबों को क्यों याद रखोगे? कुछ प्रोफेसर होल्कर की भी याद है?" और मनोहर ने पहली सिगरेट को ऐश-ट्रे में डालकर दूसरी जला ली।

"हां। उन्होंने अरुणा से शादी की थी न?" रमेश ने पूछा।

"जी हां।"

"प्रेम-विवाह था।"

"उस वक्त तो था ही।"

रमेश चौंका। "अच्छा! अब नहीं रहा?"

"इस वक्त की जाने दीजिए। अब तो दोनों तलवारों की तरह खटका करते हैं।"

"ऐसा!" रमेश ने आश्चर्य से कहा।

मनोहर अप्रतिभ हुआ। वह सड़कों पर जेब काट सकता है; चोरी कर सकता है। ऐसा क्वारा है कि गांव की वह कहावत उस पर शतशः लागू होती है—कि हूं तो इस गांव की बेटी पर बहुओं से अच्छी पड़ती हूं। वह सभ्य समाज के प्रत्येक तरीके से परिचित है, जब रमी और ब्रिज खेलने बैठता है तो मेज़ पर से हारकर नहीं उठता। जिस स्त्री को उसे फंसाना होता है, उससे पहले भाई-बहन का सम्बन्ध पैदा करता है, और बाद में उसे इसकी तनिक भी झेंप नहीं होती। वह मनोहर समाज का घिसा रुपया है। पर रमेश ने नोट सरकाया है, जिसका मूल्य भी अधिक है, कम जगह में सिमटता है, हल्का है, पर उस रुपये से अधिक खरीदने की ताकत रखता है। ऐसे का अर्थ है···छोड़ो, कुछ और बात करो।

रमेश हंस दिया। यह बात उसे पसन्द आई। मनोहर उठ खड़ा हुआ। उसने आधी सिगरेट बुझाते हुए एक नई सुलगा ली और कहा, "कुछ मदद कर देना भाई उसकी। तुम कहो तो मैं प्रोफेसर को भेज दूं?"

"क्यों?" रमेश ने पूछा।

"लाजवाब लिखता है। दो-चार किताबें उससे लिखवा लो तो वह नाम होगा···" मनोहर बात पूरी न कर सका। रमेश ने काटकर एकदम कहा, "क्या कहते हो? किसी की कलम का नाम? नाम तो उसका होगा?"

"तो अभी कच्चे हो। नाम तुम्हारा होगा।" मनोहर ने इशारा किया जैसे समझ जाओ, अब बनने में क्या धरा है। और फिर उसने नितांत निर्विकार स्वर से एक फुलझड़ी सुलगाई, "और चाहो तो अरुणा को भी तुम्हारे पास भेज दूं?" और इससे पहले कि रमेश कुछ कहे, कह ही दिया, "नमक तो उसमें अब भी है।"

रमेश हठात् गम्भीर हो गया। उसने मनोहर को घूरकर देखा, जैसे यह बातें सुनने को वह तैयार नहीं है। उसने उसे ऊपर से नीचे तक देखा और भारी स्वर में डांटा, "मनोहर!"

मनोहर सकपकाया नहीं। बोला, "नहीं, नहीं, सब ठीक हो जाएगा। वह मालिक से भी न कहेगी। नहीं, इसमें बुरा मानने की क्या बात है?"

"वह एक खानदानी औरत है।" रमेश ने अपनी परिस्थिति के स्थान पर अरुणा की परिस्थिति साफ की।

"खानदानी औरत!" मनोहर ने व्यंग्य से होंठ मोड़कर कहा, "वाह रमेश भाई! वाह! खानदान तो सबके होता है, किसी के भला, किसी के बुरा।" फिर जैसे गुर की बात कहने को झुका, "रमेश भाई!" मनोहर ने अत्यन्त धैर्य से रमेश के सामने एक सत्य प्रकट किया, "पैसे में बड़ी ताकत होती है।"

रमेश पैसे की शक्ति जानता था। पर इस बात को वह स्वीकार नहीं करना चाहता था, "तुम अब जा सकते हो।" उसने दृढ़ता से कहा और अब उसने पहली सिगरेट फेंककर दूसरी जलाई।

मनोहर मुस्कराया। कहा, "आदतें वही हैं तुममें यार। झेंप न गई,

और यारों से ही। अरुणा को तुम्हारा सलाम दिये आता हूं।"

"नहीं।"

"क्योंकि तुम मुझे नीच समझते हो ?"

"मुझसे मत कहो कि मैं क्या सोचता हूं।"

"परन्तु याद रखो मेरे दोस्त, मनोहर झूठ नहीं कहता।"

"हो सकता है।"

"तो फिर आने दो न ? तुम्हारा क्या बिगड़ जाएगा ? यहां तो हिमालय है। एक-आध छोटी नदी समझो और बह गई। खर्चों में खर्चे हैं।"

मनोहर का मन तिक्त था। रमेश सोच में पड़ गया था। वह भी यह देखना चाहता था कि वह लड़की जो इतनी सीधी थी, वह ऐसा भी कर सकती है ?

मनोहर जैसे समझ गया। कहा, "तुम सोचते होगे कि इतना धन तो पहले भी लोगों के पास था, फिर अरुणा क्यों न उन धनवानों के पास चली गई। कहो, मैं झूठ कहता हूं। यही नहीं सोच रहे थे तुम ?" मनोहर ने सीधा प्रश्न किया। रमेश उसकी बात सुनकर अचकचा गया। वह केवल उसको देखता रह गया। मनोहर के हृदय में प्रतिशोध की भावना जाग रही थी। बोला, "पाप वह पाप है जो लोगों को पता चल जाता है। मेरे भाई, अगर सरकार कानून बना दे कि लिफाफों की जगह सिर्फ पोस्टकार्ड जाया करेंगे, तो आधी खतोकिताबत कल बन्द हो जाए। दुनिया का कायदा ही यह है।"

रमेश ने कहा, "मुझे विश्वास नहीं होता।" मनोहर ने संदिग्ध दृष्टि से देखा। कुछ देर खड़ा रहा और वह सीधा अरुणा के पास चला गया।

अरुणा झाड़ू लगा रही थी। उसके सिर से पसीना टपक रहा था। मनोहर को देखकर वह इस बार पहले से भी अधिक झेंपी। प्रोफेसर कालेज चला गया था। एकांत था।

"क्यों ?" मनोहर ने कहा, "मुझे फिर देखकर आश्चर्य हो रहा

है ?"

"क्यों न होगा ?" अरुणा ने झाड़ू फेंकते हुए कहा।

"रमेश से मिलकर आ रहा हूं।"

"अच्छा !" अरुणा ने कुर्सी खींचकर बैठते हुए कहा।

"आदमी बदला नहीं है।"

"शरीफ आदमी कभी नहीं बदलते।"

"और फिर मैंने तुम्हारी बात चलाई।" मनोहर ने छत की तरफ देखते हुए कहा, "बात की बात थी। सच अरुणा देवी ! वह मदद करने को तैयार है।"

"क्यों ?" अरुणा ने संदिग्ध स्वर में कहा। उसकी स्त्री अब सचेत हो गई थी। वह जानती थी—मनोहर पुराना आवारा है। कहीं कुछ गुल न खिला आया हो। अतः सावधान रहना आवश्यक था।

"प्रोफेसर लिखेंगे। रमेश के नाम से किताब छपेगी। पर तुम प्रोफेसर को समझा देना। मैंने रमेश से कह दिया है कि अरुणा ने ही सब इन्तज़ाम किया है। प्रोफेसर तैयार नहीं थे। अरुणा ने उन्हें राज़ी कर लिया। बोलो, कर सकोगी ?"

अरुणा के उत्तर देने के पहले ही वह फिर बोला, "मैं जानता था, तुम अब हिचकिचाओगी। आओ, ज़रा मिलो-जुलो। ऐसे घर बैठे काम नहीं चलता। तुमने तो बेकार इतना पढ़ा-लिखा।"

"अब सब इन्तज़ाम मैं कर लूंगी।" अरुणा ने कहा, "पर तुम्हें क्या फायदा हुआ ?"

"मुझे न भूल जाना। एक हज़ार मुझे भी देना। घर बैठे फायदा कराया है तो मुझे भी हिस्सा देना।" मनोहर ने अपनी परिस्थिति स्पष्ट कर दी।

"ज़रूर !"

मनोहर मुस्कराया। उसने छिपी नजरों से अरुणा को देखा। और उठते हुए उड़ती बात की, "चलता हूं।"

"ठहर जाओ। चाय बना लाती हूं।"

"अजी क्यों तकलीफ करती हो।"

"इसमें भला क्या तकलीफ है।"

मनोहर बैठ गया। अरुणा चाय बना लाई। पीकर वह उठा।

"तो कब चली जाऊं ?"

"यह भी मुझसे पूछती हो ! दफ्तर न जाना उसके।"

"मैं जानती हूं, वहां न जाना चाहिए।"

मनोहर ने घर का पता दिया। वह चला गया। अरुणा घर के काम में लगी। नहाकर आई तो उसमें एक स्फूर्ति थी। बालों में कंघी करते समय उसने एक बार शीशे में अनजाने ही देखा। हृदय में खेद हुआ। वह पहले वाली चमक चली गई थी। उसकी उम्र की औरतें नहीं, लड़कियां कहलाती हैं, पर उन्हें इतना काम नहीं करना पड़ता। शायद वह अब मां होती तो अपने इस पक्ष पर न सोचती। पर वह मां नहीं थी।

अरुणा ने देखा और घड़ी को देखती रही।

14

मालती ने भीतर से कहा, "खाना कै बजे खाइएगा आज ?"

"आ जाऊंगी ग्यारह बजे तक।" ममता ने कहा। मालती भीतर से बाहर आ रही थी। इसी समय बाहर के फाटक पर कोई आता हुआ दिखाई दिया। वह मनोहर था। वह प्रसन्न था।

ममता जाने को तैयार खड़ी थी। शोभा पास खड़ी थी। मनोहर तेज-तेज आया और शोभा पर उसकी आंखें अटक गईं। पर कहा उसने ममता से ही, "बड़े वक्त से ही आया हूं न ? ओहो, आज तो कहीं जाने की तैयारी हो रही है ?"

"क्लब जा रही थी।" ममता ने कहा। वह सोच रही थी कि यह बे-वक्त की बला इस वक्त कैसे आ गई ?

"यह कौन है ?" मनोहर ने शोभा को देखकर पूछा।

"नौकरानी है।" ममता ने उत्तर दिया।

शोभा घबराकर भीतर चली गई।

"सोने को सुहागा मिलता है ममता बीबी! भगवान, तू सबकी सुनता है, भगवान, हे भगवान!" उसने ऐसे आवाज़ दी जैसे किसी नौकर को आवाज़ दे रहा था।

"क्या बात है?" ममता ने पूछा।

"अन्दर चलो। एक बात कहूंगा।" मनोहर ने भौंहें नचाईं।

शोभा और मालती ने देखा वे सब अन्दर चले गए। मालती की मुखाकृति पर एक काली छाया डोल उठी, जैसे वह शंकित हो गई थी।

शोभा ने पूछा, "क्या बात है मालती?"

"कुछ नहीं। यह एक बहुत बुरा आदमी है।"

"यहां तो सब ही ऐसे लोग आते हैं।"

"देखूं।" कहकर मालती आगे बढ़ी। शोभा भी उसके पीछे-पीछे चली। दोनों बगल के कमरे से सुनने लगीं। परदा हटाकर मालती ने तनिक झांका।

"बता दूं?" मनोहर ने पूछा।

"कहो न?" ममता उद्विग्न थी।

मनोहर ने ममता के दोनों कंधे पकड़ लिए और अपनी आंखें उसकी आंखों पर गड़ाकर कहा, "रमेश बहुत बड़ा आदमी हो गया है।"

"सच!" ममता ने आंखें फाड़कर कहा। मनोहर को प्रसन्नता हुई। और साथ ही वह अप्रतिभ भी हुआ, क्योंकि कृत्रिमता स्वर में झलक रही थी।

"नहीं तो क्या झूठ? तुम्हें जाना चाहिए। फोर्ट कुछ दूर है?"

"दूर? अब मुझे कुछ दूर नहीं है।"

"तो लाओ मेरा इनाम!" उसने हाथ बढ़ाया।

"इनाम! काम तो सचमुच तुमने लाजवाब नहीं किया है।"

"ऐं!" मनोहर चौंका।

"मैं अखबार में देख चुकी थी, और मैं उसके पास जाना नहीं चाहती

थी। एक शहर में रहा। इतना रोजगार किया, और मुझे पता तक न चला ?"

"जी, हमारे-आपके रोजगार का दायरा दूसरा है और आपको बैरिस्टर से फुर्सत ही कब थी।"

"वह मेरे पास खुद आएगा। पर तुम कहते हो तो मिल लूंगी।"

"मिल लीजिए। दौलत आदमी का दिमाग बदल देती है। आप भी तो अब बैरिस्टर को छोड़कर रमेश के पास जाने को तैयार हैं ?"

"क्या चाहते हो ?" ममता ने तिनककर कहा।

"इनाम !" मनोहर ने कठोर स्वर से कहा।

"लो !" कहकर ममता मुड़ी। दीवार के पास गई और पर्दा हटाया। भीतर सेफ दिखाई दिया। मनोहर की आंखें झुक गईं और नजर कानों पर बैठ गई। ममता ने अपना सेफ खोला। मनोहर ने देखा। ममता ने सौ का नोट निकालकर बढ़ाया। मनोहर ने झुककर कहा, "यहां तो दूसरों के भेदों का पता चलाना ही अपना काम है। नेकी कर और दरिया में डाल। प्रोफेसर होल्कर ने बड़ी-बड़ी बहसें कीं, पर मैंने अरुणा को मना ही लिया और रमेश के पास भेज ही दिया।"

"अरुणा को ! क्यों ?" ममता ने झटके से पूछा। उसके नेत्रों में ईर्ष्या दिखाई दे रही थी।

"मनोहर अजीब आदमी है, ममता बीबी। अगर किसी का फायदा है तो जरूर करता है, चाहे उसके लिए झूठ भी बोलना पड़े और रुपये की जरूरत पड़ती है तो अपना-पराया नहीं देखता···" कहकर उसने नजर घुमाई और जैसे वह दृष्टि अब सेफ पर खिंचे हुए पर्दे को भेद गई, "और हराम की दौलत पर तो अपना हक समझता है।"

फिर वे चले गए। शोभा पीछे-पीछे गई। द्वार बंद करने के पहले देखा। मनोहर द्वार पर कुछ सोच रहा था। लौटकर आई तो रमेश के चित्र पर नजर पड़ी जो अखबार पर मालती के सामने खुला पड़ा था।

मालती का मुख देखकर शोभा चौंक गई।

15

अरुणा बैठ गई। भोला ने पर्दा उठाया और भीतर चला गया। अरुणा के मुख पर अजीब कौतूहल था। उस कमरे में विशाल चित्र टंगे थे और कीमती सोफासेट बिछे हुए थे। धरती पर पड़ा कालीन बड़ा मोटा था। उस वैभव को देखकर अरुणा संकुचित हो गई। काश, ममता की जगह अरुणा होती तो उसने अवश्य रमेश से तब शादी कर ली होती। इसी समय रमेश ने प्रवेश किया।

"अरुणा, तुम !" उसके मुंह से निकला।

"जी हां।" अरुणा ने उठते हुए कहा। रमेश का गम्भीर मुख देखकर वह सहसा ही सहम गई थी। "मुझे मनोहर ने भेजा है," उसने अपना परिचय दिया। रमेश फिर भी नहीं बोला तो उसने पूछा, "मैंने आपको आकर कष्ट दिया ?"

रमेश ने बैठने को इंगित किया और बैठ गया। अरुणा भी बैठ गई। वह इस समय भयभीत-सी थी।

"क्या तुम सच कहती हो ?" रमेश ने उससे पूछा, "क्या मनोहर ने तुम्हें भेजा है या अपनी इच्छा से तुम आई हो ?"

"इसमें झूठ की क्या बात है ?" अरुणा ने कहा, वह अब समझी। शायद रमेश पक्की करना चाहता है कि प्रोफेसर उसके नाम से किताबें लिख देगा या नहीं। वह मुस्कराई। रमेश ने उसे देखा। वह शृंगार करके आई थी। वैसे आजकल की प्रायः सभी पढ़ी-लिखी स्त्रियां इतना शृंगार कर लेती हैं, पर रमेश को लगा वह विशेष सजकर आई थी। इसी से उसे चोट-सी लगी। हठात् मुड़कर कहा, "अरुणा !"

"जी !" अरुणा ने सरलता से पूछा।

बात उसके होंठों तक आई और लौट गई। रमेश ने कहना चाहा, पर वह कुछ भी कह नहीं सका। और जैसे अंत में अपने-आप ज़ोर-ज़ोर से बड़बड़ाने लगा, ठीक है। कुछ नहीं, कुछ नहीं। तुम घर जाओ अरुणा। इतना ही काफी है। फिर कहा, "मैं जो आशा भी नहीं करता था वही हुआ।" लंबी सांस ली, "काश ! मैं पहले ही से जानता होता। लेकिन

सिद्धान्त ! सिद्धान्त एक बेकार की चीज है। आज की दुनिया में उसका मोल केवल कुछ बेवकूफों की नजर में है, जो सिर्फ हाय-हाय करते हैं।"

"यह तो मैं भी सोचती थी।" अरुणा ने पुलककर कहा।

"यही तुम भी सोचती थीं ? शादी करते समय तुमने न सोचा था कि प्रोफेसर पर क्या बीतेगी ?" उसका स्वर तीव्र हो गया। अरुणा ने उस पर ध्यान न दिया।

"पहले तो उन्होंने मेरे आने पर एतराज किया था, पर मैंने उन्हें समझा दिया। कहा—रुपया पाने पर सब कुछ किया जा सकता है। इसलिए रुपया जरूर, जैसे भी हो, कमाना चाहिए।"

अरुणा की निर्बलता ने उसे बहुत कचोटा, क्योंकि वह स्वयं अपना जीवन याद कर उठा। अब क्या कहे वह ?

क्या अरुणा पापिन है ?

"रुपया !" उसने कहा।

अरुणा ने दुहराया, "शक्ति है।"

रमेश का सिर झुक गया। "फिर ?" उसने पूछा।

"वे मान गए।" अरुणा ने उत्तर दिया।

"मानते वक्त उनके दिल पर क्या असर हुआ ?"

"कुछ नहीं। बोले किसी को मालूम नहीं होना चाहिए। सो मनोहर ने उसका जिम्मा लिया। और मैं तो अपने मुंह से ऐसी बात कह ही नहीं सकती, यह वे जानते ही हैं।"

"ठीक कहा था अरुणा।" उसने बुझे हुए स्वर में कहा, मानो वह लहर की भांति लौट रहा था, "तुम जाओ, मेरी मोटर में जाओ और अभी प्रोफेसर को भेज दो। मैं यहीं प्रतीक्षा कर रहा हूं।"

"उनके साथ मुझे फिर आने की ज़रूरत पड़ेगी ? मैं जाऊं ?" अरुणा ने मुस्कराकर पूछा। रमेश ने उसके नेत्रों को देखा तो उसे वासना दिखी, जो वहां नहीं थी।

"नहीं अरुणा, तुम्हारी नहीं, प्रोफेसर की ज़रूरत है।" उसने कहा और दृष्टि नीची कर ली।

"नमस्ते !" अरुणा ने कहा।

रमेश ने सिर हिला दिया। अरुणा चली गई। रमेश व्याकुल-सा देखता रहा। फिर वह बैठ गया। एक सिगरेट सुलगा ली।

धुआं छोड़ा। आज की घटना ने उसके पैर धरती से उखाड़ दिए थे। जितना ही वह इस विषय पर सोचता था, उसका दिल भारी होता जाता था। आज उसे यह अनुभव हो रहा था कि जिस धन को उसने कमाया है, वह धन अब इतना सशक्त हो गया है कि स्वयं रमेश की सत्ता उसका ब्याज बन गई है।

फिर वह उठा। उसने सेफ खोला। नोटों की चिनी हुई गड्डियां दिखाई दीं। वह उन्हें देर तक देखता रहा। फिर उसने धीरे-धीरे उनको छूकर कहा, "मैं क्या जानता था कि इतना जोर है तुममें? उफ! यही है दुनिया! क्या तुमने आज मौत की तरह आदमी को जकड़कर उसकी आत्मा को कुचल दिया है?"

मानो यह प्रश्न उसने अपने-आपसे किया। आज पहली बार उसे यह अनुभव हुआ कि ममता को भी वह ऐसे ही खरीद लेगा। जो पैसे से अपना मोल लगाता है, क्या उसके व्यक्तित्व का भी कोई मोल है?

वह बैठ गया। बाहर मोटर रुकने का शब्द हुआ।

× × ×

रमेश समझ गया वह आ गया है, पर वह स्वागत करने के लिए खड़ा नहीं हुआ। उसने सोचा। आखिर उस्ताद रह चुका है। कायदे से इसे मेरा न उठना अखरना चाहिए। पर, अगर नहीं अखरता तो मनोहर की बात साबित हो जाएगी कि यह भी एक मृतात्मा है। इसलिए पहले ही से देखकर न आदमी को पूरी परख कर लीजिए।

"कहिए जनाब, कहां हैं?" स्वर सुनाई दिया।

"ओह! प्रोफेसर साहब, कहां हैं आप? आइये न!"

"किधर भई! यह तो पूरा महल है।"

"इधर से आइए, इधर से।"

प्रोफेसर आया।

"बैठिए।" रमेश ने हाथ से इशारा किया। सचमुच वह तो जाकर चुपचाप बैठ गया। कोई गौरव नहीं। रमेश उठा। चैक लिखा। काटकर

उसको दिया।

"दस हज़ार!" प्रोफेसर के मुंह से फूट निकला। जैसे उसे अब भी विश्वास नहीं हुआ था।

"रख लीजिए।" रमेश ने कहा।

प्रोफेसर ने चैक रख लिया। तब रमेश ने उससे धीरे-धीरे कहा, "प्रोफेसर साहब! एक दिन मैं आपसे मदद लेने आया था। उस दिन आपने मुझे सिद्धान्तों पर लेक्चर दिया था। मैं आशा करता हूं, यह रुपया अपने सिद्धान्तों पर पड़ी आपकी मजबूरियों का कफन फाड़कर आपको वास्तविकता दिखला सकेगा।"

प्रोफेसर कुछ झेंपा। फिर झेंप मिटाने को दो मिनट तक हंसा और रमेश ने देखा, वह पढ़ा-लिखा आदमी असल में कुत्ता था। दुम दबी हुई थी। उसने कहा, "मुझसे मनोहर ने कहा था। क्या करूं, अरुणा की खुशी मेरी खुशी है। स्त्री धन ही चाहती है।"

"यही मैंने कहा था उस दिन तो आपने प्रेम की दुहाई देना शुरू किया था। याद है प्रोफेसर साहब?" रमेश ने कठोरता से किन्तु सधे हुए स्वर से कहा। प्रोफेसर चुप बैठा रहा। रमेश हंसा। उसका हास्य बड़ा बर्बर था, सहज नहीं। उसमें विद्रूप कूट-कूटकर भरा हुआ था। प्रोफेसर उस सबको पी गया।

"तो फिर ठीक है, आप जा सकते हैं।" रमेश ने कहा।

और सचमुच प्रोफेसर उठा और चला गया। रमेश की इच्छा हुई उसे पकड़कर मारे, इतना मारे कि वह मर जाए, पर वह सहसा ही संभल गया।

× × ×

भोला आया। उसने देखा—रमेश गंभीर खड़ा था।

"सरकार, खाना तैयार है।" नम्रता से कहा।

रमेश ने जैसे सुना और नहीं सुना। भोला ने अपनी बात को फिर कहा, पर पहले से भी अधिक नम्रता से।

"मुझे भूख नहीं है।" उसने मुड़कर कहा।

भोला चला गया।

बाहर गरीबों को दान दिया जा रहा था।

उसने खिड़की से उन कंकालों को देखा जो स्त्री और पुरुष का वेश धारण करके अन्न के लिए हाथ पसारे बैठे थे। जीवन के किस क्षण में अपना ही वैभव डराने लगता है, वह कोई नहीं जानता।

सेठजी की जय!

रमेश सेठ की जय!

जय-जयकार से पेट घुटनों के बल पड़े थे। आत्मा हाहा खा रही थी। रमेश को लगा—कल वह भी इस भीड़ में खड़ा हो सकता है क्योंकि धन की माया आनी-जानी है। रात को करोड़पति, सुबह सड़क की भीख भी नहीं मिलती। यह बम्बई है। यहां मनुष्य मुनाफों के लिए माल बनाता है, पैदा करता है, न कि आदमी की ज़रूरतों को पूरा करने के लिए। और चेतना के क्षीण तन्तु मिले। स्वर कहीं दूर से उठा जो रमेश को सुनाई दिया, 'मेरे देवता! तुम जैसे चलोगे, मैं वैसी ही रहूंगी। मुझे धन नहीं चाहिए, कुछ नहीं चाहिए, मैं तुम्हें चाहती हूं।'

शोभा का शान्त रूप सामने आ गया। वह कितना शान्त है, उसमें सहज जीवन की दृढ़ता है। क्या यह संस्कार है या मनुष्य की शक्ति है? रमेश जितना ही सोच रहा है उतना ही उलझता जा रहा है···और अरुणा ने यह क्या कहा है?

···रुपया पाने पर सब कुछ किया जा सकता है। इसलिए रुपया चाहे जैसे भी हो, ज़रूर कमाना चाहिए।···

इस स्त्री में और वेश्या में भेद ही क्या है? कुछ नहीं। बस, यह है कि इसके पास अपने पाप छिपाने को एक पुरुष और है जो स्वयं इतना पतित है कि उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। और ममता···

···चलूंगी लेकिन तुम्हारा कहीं ठिकाना है? याद रखो, जहाज़ के तैरने के लिए समुद्र चाहिये···

लपट! धू-धू करती लपट। उठे तो आकाश को फाड़कर स्वर्ग को भी जला दे। और फिर वह ज्वाला ठंडी हो गई। रमेश के सामने एक और ही रूप आ खड़ा हुआ। दग्ध, पर जल-जलकर निखरा हुआ। समाज का सबसे घृणित और उपेक्षित प्राणी और वह क्या कह रहा है?

…औरत पैसा नहीं चाहती। दिल चाहती है, जब उसे प्यार मिलता है तब वह दुनिया की बड़ी से बड़ी मुसीबत झेल सकती है।

पर यह भी तो उस स्त्री के शब्द हैं जिसके पास धन है।

पर मालती का क्या हुआ होगा ? क्या वह जीवित होगी ? यदि उसने निराधार होकर आत्महत्या कर ली हो तो ?…

हां, रमेश ने सोचा, उसके साथ शायद वह कुछ ज्यादती कर गया था। पर फिर विचार उड़ गया। बहुत होगा, मिलेगी तो रुपयों में उसे तोल दूंगा।

वह अब फिर स्वस्थ हो चला था। धन का बल फिर उसे उपकार चुकाने की स्पर्धा दे रहा था।

रमेश उठा और कमरे में घूमने लगा। अब बार-बार उसके दिमाग में एक ही चित्र आ रहा था। वह है मालती। मालती गाती थी। उसने कहा था, 'मैं तुम्हारे साथ पत्नी बनकर रहना चाहती हूं।'

कैसा मूर्ख था वह जो भावुकता में एक वेश्या के साथ रहने को तैयार हो गया। वेश्या भी किसी की होकर रहती है ? अब कहां है ? बेच रही होगी अपने-आपको, जाने किन-किन बीमारियों की खान हो गई होगी…।

उसे पैशाचिक आनन्द हुआ।

वह रुका और उसने सिर उठाकर अपने-आपसे कहा, 'रमेश का पाप संयोग था, मालती का उसकी प्रकृति का परिणाम।'

16

मालती रमेश का चित्र देख रही थी। शोभा ने देखा उसके नेत्रों में अजीब-सी चमक थी।

"मालकिन गईं ?" उसने पूछा।

"क्लब गई हैं।" मालती ने अखबार एक ओर ऐसे सरका दिया जैसे वह तो वैसे ही देख रही थी।

"आज खुश तो वहुत हैं।" शोभा ने पूछा।

"देखती हूं, तू शहर आकर वहुत कुछ समझने लगी है।" मालती ने कहा।

"आज मैं जा रही हूं।" शोभा ने कहा।

"कहां ?" मालती चौंकी।

"मेरे आदमी का पता लग गया है।" शोभा ने कहा।

"कैसे ?"

"गांव का एक आदमी कह गया है। उस पर एक औरत डोरे डाल रही है। मैं उससे छुड़ाने जाऊंगी।" शोभा ने कहा।

"मुझे भी मेरे आदमी का पता मिल गया है।" मालती ने कहा।

"तो फिर जातीं क्यों नहीं ?" शोभा ने पूछा।

"मेरे रास्ते में वहुत कांटे हैं। ऐसे नहीं जा सकती। मुझे तो अभी यहीं रहना होगा।" मालती की वात के समाप्त होते ही शोभा ने कहा, "और आज मैं इस पाप के कैदखाने से बाहर जा रही हूं।"

"जानती है," मालती ने कहा, "बाहर कितने भयानक लोग रहते हैं ?"

शोभा हंसी। उसने कहा, "जहां मैं जा रही हूं, उस जगह ने ही मुझे वता दिया है कि स्त्री वहुत कुछ कर सकती है।" मालती को विस्मय हुआ। शोभा ने कहा, "मैं जाऊंगी।"

"पर मालकिन तो अभी नहीं लौटीं।" मालती ने टोका।

"अब मुझे किसी का भी इन्तज़ार नहीं है।" शोभा ने कहा।

मालती ने देखा—शोभा की आंखों में आत्मविश्वास जाग रहा था। और मालती के प्रति कृतज्ञता उमड़ रही थी। उसने कहा, "बहिन, सब कुछ भूल सकती हूं, पर तुम्हारी हमदर्दी को नहीं भूलूंगी।"

मालती को अच्छा लगा। उसे भी शोभा से स्नेह हो गया था। कहा, "जब अंधे को अंधा सहारा देता है तो दोनों एक-दूसरे को अपना साथी समझते हैं, पर राह कोई नहीं पहचानता। अच्छा जाओ। सुखी

रहो।"

शोभा के मुख पर स्नेह छा गया और फिर एक लज्जा की अभिव्यक्ति हुई। कहा, "तुम्हें मैंने जीजी कहा है।"

मालती ने देखा। शोभा ने फिर कहा, "तुम्हें अपना आदमी बताऊं ?"

मालती ने कहा, "मैं जानती हूं।"

"जान जाओगी।" उसने कहा—"यही मेरे पति हैं, जिनसे मेरा अटूट नाता है।" उसने रमेश का चित्र दिखाया।

मालती ने कहा, "जल्दी जाओ बहिन! उनकी रक्षा करो। मालकिन लौटनेवाली हैं।" उसकी आतुरता पर शोभा को डर हुआ। वह गले मिलकर चली गई। तब मालती लौटी। रमेश का चित्र देखा और बार-बार उसने अपने मुंह पर चांटे मारे और पागल-सी धरती पर लोटकर रोने लगी। आज वह सचमुच लुट गई थी।

17

विशाल भवन के हॉल में टेलीफोन की घंटी बज उठी। रमेश ने फोन उठाया। उसने सुना और कह उठा, "हलो, कौन ? ममता !"

उसके शरीर में एक सिहरन व्याप गई।

"तुम पूछती हो ? आओ।···शाम को आओगी ? अच्छी बात है।"

उसने फोन रख दिया। वह गंभीर चिंता में डूब गया था। इस समय अपने भावों को इकट्ठा नहीं कर पा रहा था। क्या सचमुच वह दिन आ गया है कि जहाज अब स्वयं तैर-तैरकर उसके पास आने लगा है ? परन्तु फोन तो ममता ने ही किया है। वही बोली है। आत्मतुष्टि ने पुकारकर कहा।

एकाएक उसका ध्यान टूटा। बाहर कुछ शोर-सा हो रहा था।

आतुरता में वह स्वयं वहां चला गया। भोला खड़ा था। उसने कहा, "भोला !"

"जी मालिक !"

"यह क्या शोर हो रहा है ?"

"मालिक," भोला ने कहा—"यह गरीव औरत आई है। कहती है नौकरी करूंगी।"

स्त्री भीतर घुस आई। उसके मुंह पर घूंघट था। रमेश ने सोचा वह इसे नहीं रख सकेगा। वह स्त्री है। पर उसे याद आया। रईसों के यहां नौकरानियां हमेशा होती हैं। अच्छा है जरा वक्त बहलता भी है। घर भी अच्छा लगता है।

स्त्री गिड़गिड़ाकर कह रही थी, "मालिक ! तुम्हारे द्वार पर इतने भिखारी पलते हैं, दो रोटी मुझे भी मिल जाएं तो भगवान तुम्हारे खज़ाने को दिन दूना रात चौगुना करेंगे।"

रमेश ने कहा, "पड़ा रहने दे। पूछ, क्या करती है ?"

औरत सुन चुकी थी, पर भोला ज़ोर से मशीन की तरह दुहरा गया।

"सव काम मालिक…" स्त्री ने कहा।

"जाओ, अपना-अपना काम करो।" रमेश ने कहा।

आज वह उद्विग्न था। मोटर में वैठकर वह चला गया, तो स्त्री और भोला घर में अकेले रह गए।

भोला ने कहा, "तेरा नाम क्या है ?"

घूंघट को हटाकर स्त्री ने कहा, "चंपा।"

वह शोभा थी। भोला चला गया। शोभा का हृदय आज उमंग से भर रहा था। रमेश का बड़ा चित्र सामने ही लग रहा था। वंबई में सिनेमा के गीत कौन नहीं सीख जाता ? और ममता के घर की फ़ुर्सत में वह क्या करती थी। आज हृदय विभोर होकर गुनगुना उठा। भोला ने सुना तो भीतर आया और सिर हिलाकर चला गया।

जव रमेश लौटा तो उसके जूते खोलते हुए भोला ने कहा, "मालिक !"

"हूं।" रमेश ने पूछा।

"चंपा बहुत अच्छा गाती है।"

रमेश हंसा। कहा, "अच्छा।"

शोभा सुन रही थी। भोला ने फिर कहा, "मालिक! चंपा बहुत अच्छा काम करती है।"

रमेश ने हंसकर कहा, "अच्छा! उससे तेरी शादी करा दूंगा बेवकूफ!"

भोला दांत निपोरकर चला गया। रमेश अखबार पढ़ने लगा। भोला ने फिर आकर कहा, "मालिक!"

"क्या है?" रमेश ने सिर उठाया।

"मालिक! चंपा रोती है।" भोला ने करुण स्वर से कहा।

"कभी गाती है, कभी रोती है, जा भाग…"

कहकर उसने पृष्ठ पलटा और वह एकदम खड़ा हो गया। सामने ही ममता खड़ी थी।

"ममता!" रमेश की अन्तरात्मा पुकार उठी। उस स्वर में गर्व भी था, याचना भी, जय भी, आत्मसमर्पण भी।

ममता बैठ गई। कहा, "तुम समझते थे मैं देर से आऊंगी?"

"नहीं।" वह मुस्कराया। शोभा ने पर्दे के पीछे से उसकी उस दृष्टि को देखा और उसे लगा—वह अब जल उठेगी।

"चाय पियोगी?" रमेश ने पूछा।

"तुम पिलाओगे और मैं नहीं पिऊंगी!" ममता ने स्नेह से कहा।

रमेश का देह प्रस्फुटित होते कदम्ब की भांति रोमांचित हो उठा। वह पुकार उठा, "चंपा!"

इस स्वर की मिठास सुनकर स्वयं रमेश को ही अपने ऊपर आश्चर्य हुआ। वह व्यापारी था। दफ्तर के क्षेत्र में वह निष्कपट रूप से स्वार्थी था। पर ममता के लिए क्यों वह इतना विचलित हो गया है। यह भी जीवन का एक बड़ा ही कठोर सत्य है कि कोई-कोई व्यक्ति अन्यों की तुलना में हृदय को बहुत ही अच्छा लगता है। कोई कारण पूछे तो बताना असम्भव-सा लगता है।

"जी लाई।" स्त्री-स्वर सुनाई दिया।

आवाज सुनकर ममता चौंकी।

"यह कौन है?" उसने पूछा।

शोभा घूंघट काढ़े चाय की ट्रे संभाले हुई आई।

"नौकरानी है।" रमेश ने कहा।

"ऐसी ही एक मेरे घर भी थी। वह ऐसी गई भागी नहीं थी। मैंने अपनी दूसरी नौकरानी से पूछा तो पता चला कि उस औरत को उसका आदमी मिल गया।"

"गांव वालों को," रमेश ने स्वर उतारकर, चढ़ाकर, बड़े मजे से मजाक उड़ाते हुए कहा, "अपनी औरत छोड़कर भाग जाने का शौक होता है?"

शोभा की इच्छा हुई कि आंखें मिलाकर मालिक से पूछे, 'यह सच है!'

"यह घूंघट क्यों करती है?" ममता ने पूछा।

"यह हिन्दुस्तान है। औरत पराए मर्दों के सामने नहीं निकलती।" रमेश ने हंसकर कहा। ममता ने मजाक उड़ाया, "सुशील है, तंगदिल औरत है। अपनी शक्ल छिपाकर दूसरों को जलाना नहीं चाहती।" रमेश और ममता दोनों हंसे। शोभा ने क्रोध से होंठ काटा। उसने हृदय में पूछा, 'सच बताओ, तुम मेरे लिए पराए मर्द हो?' पर वह रमेश से कुछ भी नहीं कह सकी। उसके सामने ही ममता बैठी रही।

रमेश और ममता उठे।

रमेश ने कार निर्जन में आकर रोक दी। वे दोनों गाड़ी से उतरे। नये फूलों के सौरभ से सारा जंगल महक रहा था। रमेश विभोर हो रहा था और ममता मोहिनी बनी हुई थी।

ममता ने गाया, "तुम्हीं मेरे सब कुछ हो। मैंने कितने दिन बाद तुम्हें पाया है? मैंने तुम्हें सब कुछ खोकर पाया है। तुम मेरे सामने रहो, मैं तुम्हारे सामने।"

ममता गाती थी, रमेश को लगता था वह अपने-आपको खो देगा। क्या इसी सुख के लिए वह इतने दिन से व्याकुल नहीं था?

× × ×

किंतु मालती का एकान्त अब उसे और भी सताने लगा था। एक ही रमेश के अनेक रूप थे। वह कहती—तुम ही मेरे सब कुछ हो। मैंने तुम्हें कितने दिन बाद पाया है परन्तु भाग्य अब भी तुम्हारे पास नहीं जाने देता, तुम आंखों से दूर हो परन्तु हृदय से तो दूर नहीं हो ?

सचमुच प्यार का जो सुख तड़पन में है, वह कहीं नहीं है। वह हृदय की एक हूक ही नहीं, युगान्तर की प्यास है। पर तड़पन का सुख जीवन में एक क्षण भी शोभा नहीं देता। वह शक्ति दे सकता है, प्राण देने की प्रेरणा दे सकता है, अपने-आपको तिल-तिल कर रिस-रिसकर मिटा देने की स्वावलंबनमयी तृष्णा दे सकता है, पर मन तो उससे एक भी क्षण को नहीं भरता। सब कुछ आज का-सा नहीं, कल का लगने लगता है।

और शोभा की प्राप्ति तब हुई थी जब वह शोभा नहीं रही थी। आज पास होकर भी वह रमेश से दूर हो गई थी। उसने देखा ड्राइंग रूम में से होकर वे दोनों भीतर की ओर चले गए। रमेश ने ममता को अपनी भुजाओं में भर लिया। मोह के दलते बीज ने ममता को आजकल और भी सुन्दर बना रखा था।

× ×

"ममता ! यह जीवन कितना सुन्दर है।"

"मैं तो पहले ही कहती थी।"

"सच कहो ममता ! तुम्हें मेरी याद आती थी ?"

शोभा ने सुना। और मन किया, ममता की हत्या कर दे।

"क्यों, तुम्हें विश्वास नहीं होता ?" ममता ने पूछा।

शोभा ने दांत पीस लिए।

"विश्वास ! सोते-जागते तुम्हारे ही सपने देखता रहता हूं। अब मेरा दिल कितना खुश है। अब हमारी शादी होनी चाहिए।" रमेश ने कहा।

शोभा की आंखें पथराईं। क्या सुन रही है वह ? उसका ही पति उसी के सामने एक कुलटा और आवारा स्त्री से कह रहा है !

"चलो ममता !" रमेश ने कहा।

वे दोनों चले गए। शोभा तब तक देखती रही जब तक उसे मोटर दिखाई देती रही। फिर वह लौट आई।

बाज़ार में रमेश ने अपना दिल खोल दिया।

जौहरी की दूकान पर ममता ने हार पहनकर शीशे में देखा। मुग्ध हो गई। पूछा, "कैसी लगती हूं ?"

"उर्वशी।" रमेश ने कहा।

"मैं चलूं ?" वह बोली।

"जाओ। कल मिलोगी ?"

"ज़रूर।" रमेश से कहकर ममता मुस्कराई।

वह चली गई, पर रमेश बाज़ार में ही रहा। दुनिया-भर के सामान खरीदता रहा। इतनी खरीद की कि मोटर में सामान रखना कठिन हो गया।

जिस समय शाम हुई तो घर में कई मज़दूर बहुत-सा सामान ले आए। रमेश ने उत्साह से प्रवेश किया।

× × ×

"भोला ! चम्पा !" उसका स्वर गूंज उठा। दोनों चकित हो गए। दौड़कर बाहर गए और आश्चर्य से देखा।

"मालिक !" चम्पा ने कहा।

"यह सब सामान ममता के लिए आया है, इसे ठीक से लगा दो।"

"बहुत अच्छा मालिक !" भोला ने कहा।

सामान लाकर एक कमरे में रखवाया। अलमारियों में कपड़े सजाए जाने लगे। शोभा का मन जल रहा था। वह समझ रही थी। उसके सामने ही उसकी दुनिया लुट रही थी, पर वह बोलने से भी मजबूर थी। क्या करती ! भोला आतंकित हो रहा था।

शोभा साड़ियां देखती रही। वह सोच रही थी।

यह सब ममता के लिए है। ममता की शादी होने वाली है। उसके अपने होनेवाले पति का स्थान ले रही थी। ठीक ही तो है। शोभा अपढ़ गंवारिन। वह क्या इस घर की मालकिन हो सकती है ? पर शोभा का अभिमान बोला—मैं पवित्र हूं। मैं अपने पति के लिए जी रही हूं। स्त्री का सबसे बड़ा धन उसका पातिव्रत है।

वह दृढ़ता से उठी। अब वह जाकर कहेगी कि अब वह यह सब नहीं

देख सकती। वह जानती है—ममता अपवित्र है, कुटिल है। भोला ने उसे उठते देखा तो टोका। चम्पा ने नहीं सुना।

"कहां चली ? काम पड़ा है।" भोला ने दुहराया।

"काम ही तो कर रही हूं।" वह तिनककर भीतर गई। उसका हृदय हिलोरें ले रहा था। वह परिणाम की सुखद कल्पना में अपने को ममता के स्थान पर देख रही थी कि रमेश प्रसन्न हो उठेगा।

रमेश पढ़ रहा था। वह घूंघट काढ़े झिझककर खड़ी रह गई। जो सोचा था वह नहीं कर सकी। सोचना आसान था, करना बहुत कठिन। फिर भी किसी भांति साहस एकत्र किया। बात का बहाना ढूंढ़ा, "मालिक ! साड़ियां कहां रक्खी जाएंगी ?"

"अपने भोला से पूछ। मेरा दिमाग मत चाट।" रमेश ने विना देखे कहा।

"मालिक ! भोला मेरा कोई नहीं।" चम्पा ने प्रत्युत्तर दिया।

"नहीं है तो हो जाएगा।" रमेश ने टाला।

"नहीं होगा।" चम्पा ने फिर कहा।

"तेरा ब्याह हो गया ?" रमेश ने पूछा।

"नहीं मालिक ! सगाई हुई थी, आदमी छोड़ गया।"

रमेश हंसा, कहा, "बड़ा बदमाश था।"

"बदमाश नहीं मालिक ! वह एक औरत को चाहता था।"

"अच्छा, अच्छा।" रमेश ने किताब बन्द की और उठता हुआ बोला, "अपने-आप नहीं करती न ? चल देखें तो···"

वह उठा। और वे दोनों बगल के कमरे में गए।

"वह उठा ज़रा।" रमेश ने कहा। चम्पा ने उठाकर साड़ी दी।

"उसे उधर रख," रमेश ने कहा। फिर वह अपनी प्रसन्नता को छिपा न सका। उसने कहा, "देखता है भोला, यह साड़ियां, एक-एक नौ-नौ सौ रुपयों की है···"

"मालिक, साड़ियों का क्या होगा ?" भोला ने मूर्खता से पूछा।

"मालकिन आएंगी न ?" चम्पा ने काटकर जवाब दिया। कह तो गई पर अपने को धिक्कार लिया। क्या भगवान किसी स्त्री को ऐसा भी

दारुण दुःख दे सकता है ?

"औरत है न ? समझती है ?". रमेश ने हंसकर कहा।

उसे याद आया। कालेज में वे सब विवाद करते थे। समाज स्त्री के ही कारण है। पुरुष सदा ही एकान्तिक रहा। स्त्री के कारण ही परम्परा है। पर वे बातें अब भूली हुई हैं।

"स्त्री हूं," चम्पा ने कहा, "मालिक ! सब कुछ समझकर भी चुप हूं।"

"क्या समझकर ?" रमेश ने पूछा।

"यही, कुछ नहीं।" उसने कहा।

"बेवकूफ ! अपने को अक़लमन्द समझने लगी। ज़रा तारीफ करो, औरत फौरन सिर पर सवार।"

पर चम्पा सोच रही थी। सबको औरत कहते हैं। उस ममता पर मरते हैं। वह औरत नहीं है ?

जीवन में अनेक मोड़ आते हैं। और बहुधा मनुष्य गलत मोड़ पर ही मुड़-मुड़कर अपने असली लक्ष्य से दूर होता जाता है।

"मालिक, चम्पा बड़ी चतुर है।" भोला ने कहा।

चम्पा ने कनखियों से देखा, रमेश गम्भीर था। चम्पा सिर झुकाए बैठी रही।

"हूं।" रमेश ने कहा।

भोला जल्दी-जल्दी काम करने लगा। तभी बाहर द्वार पर लगी हुई घंटी बज उठी।

"कौन है ?" रमेश ने कहा।

"देखता हूं।" भोला गया। पर जब लौटा तो बुद्धू-सा नज़र आया। उसके आगे-आगे एक आदमी बड़े परिचय और शोरगुल से आ रहा था, जैसे उसे रोकनेवाला कोई नहीं, "ओह हो !" उसने आंख फाड़कर देखा और रमेश की ओर प्रशंसा की दृष्टि से देखकर कहा, "बड़ा सामान इकट्ठा कर लिया है ?"

चम्पा ने पहचाना—वही धूर्त है जो ममता के यहां आया था।

"योंही ज़रा।" रमेश ने टाला।

मनोहर मुस्कराया। उसने इतने ही को काफी नहीं समझा। भांप तो गया, प्रकट नहीं किया। केवल कहा, "वाह, कारूं का खजाना इकट्ठा कर दिया है। ममता के भाग्य से मुझे तो जलन हो रही है।"

रमेश फिर मुस्कराया और उसने पुरुष के अभिमान से मनोहर की ओर देखकर कहा, "क्यों, तुम जो चाहो वह तुम्हें मिल सकता है!"

"वाह उस्ताद, क्या दिल पाया है!" मनोहर ने नारा लगाया।

रमेश हंसा। कहा, "बैठ जाओ।"

"पहले आप बैठिए।" उसने कहा। रमेश के बैठ जाने पर मनोहर ने एक स्टूल पर चढ़कर बैठकर कहा, "जमाना रंग बदलता है, भई क्या बात है। हम समझाया करते थे कि भई मनोहर, तू कभी नहीं पनपेगा। पर अब यकीन हुआ। वादा करो, दोगे।"

"क्या आखिर?" रमेश ने कहा।

"अच्छा तो वादा करो! ममता से शादी के बाद, ममता की नौकरानी से मेरी शादी कर दोगे।" मनोहर ने कहा।

"लाहौल-विला-कूवत!" रमेश ने उत्तर दिया।

"अजी, बड़ी नमकीन औरत है।" मनोहर कहता गया।

शोभा ने सुना तो मन किया—गला फाड़कर वहीं उसका लहू पी जाए। वह जान गई उसी के लिए कह रहा है।

"यार! एक बात कहूं। किसी राव-राजा की लड़की से शादी करते तो" मनोहर कह रहा था। ममता की इस उपेक्षा से शोभा को सांत्वना हुई। एक क्षण यह ऐसा हो गया जब उसे शैतान भी फरिश्ता नजर आने लगा।

"क्यों, ठीक कहता हूं?" मनोहर ने पूछा।

"अपना-अपना ख्याल है।" रमेश ने कहा। मनोहर की आज बोलने की हिम्मत नहीं हुई। रमेश गम्भीर हो गया था।

मनोहर उठ खड़ा हुआ, "अच्छा चलें।"

रमेश ने धीरे से कहा, "अच्छा।"

वह चला गया।

रात हो गई थी। गहरी अंधेरी रात को कटीले चन्दा ने काट दिया।

पेड़ हवा में हिल रहे थे। हरियाली समुद्र के पार अब काला दीख रही थी।

रमेश बिस्तर पर लेट गया। मन भारालस था। न जाने क्या-क्या सोचता रहा। एक बार सोचा—यह चम्पा कौन है? इच्छा हुई, बुलाकर इसका अतीत पूछे तो। फिर सोचा, औरत है। सिर पर चढ़ेगी, अपना ही नुकसान होगा। यह इरादा भी बदल दिया। करवट बदल सिगरेट सुलगाई, फिर व्यापार का ध्यान आया। उस उलझन में वह डूब गया।

× × ×

"दूध ले लीजिए।" चम्पा ने कहा।

"तूने तो भोला का सारा काम अपने हाथ में ले लिया।" रमेश ने कहा।

चम्पा चुप रही।

"चम्पा! काम ज्यादा तो नहीं है?" उसने पूछा।

वह दूध पीने लगा था।

चम्पा को मौन देखकर पूछा, "कहते डरती है?"

"थोड़ा ही तो है।" चम्पा ने कहा। फिर हिम्मत बांधकर धीरे से कहा, "बहुत चाहती हूं। हुकम दें तो एक बात कहूं मालिक!"

रमेश मुस्कराया। समझा नहीं। पर आश्वासन दिया, "क्यों, कहने में क्या हर्ज है? कह दे, कह, डरती क्यों है?"

चम्पा ने धरती को अंगूठे से कुरेदा। फिर स्वर उठाकर कहा, "सामान तो आ गया मालिक, शादी कब होगी?"

रमेश ने देखा वह उत्सुक थी, अतः उत्तर देने में जानबूझकर देर की। कहा, "क्यों?"

"वैसे ही पूछती थी।"

"बस महीने-भर की देर है।"

चम्पा कुछ क्षण चुप रही। फिर धीरे से बात बढ़ाई, "क्यों मालिक," कहा, "बीबीजी के मां-बाप नहीं हैं?"

"नहीं, बाप रुपया छोड़कर मर गये थे। तब वह बच्ची थी।"

"उसी से इतने दिन काम चला है?"

"क्यों ? तू क्यों पूछती है ?"

"शादी के पहले घर-बार देख लेना चाहिए।"

"हूं !" रमेश का स्वर घहराया। और फिर स्वर उठा, "मैं कहता हूं, अजीब जमाना आ गया है भगवान ! तो तू मालकिन हो गई ? क्यों ? सब काम ठीक करती है, पर दिमाग का एक पुर्जा ढीला रह गया है। खबरदार ! आयंदा ऐसी बात मुंह से न निकालना। नौकर की तरह रह, समझी ! जाओ।"

चम्पा चली गई। पर उसके पांव पटककर जाने की रीति में उसका विरोध स्पष्ट था।

"ममता को मैं खूब जानता हूं।" रमेश धीरे से बुड़बुड़ाया।

18

बैरिस्टर बिहारीलाल के घर पर ममता के पहुंचते ही उनके चेहरे पर से मुलायमियत उठ गई, जैसे कभी इस ऊसर पर किसी जवानी के खैयाम ने कभी भी डेरा ही नहीं गाड़ा। वे उसे भीतर ले गए, बिठाया। ममता परेशान-सी थी।

"क्यों, परेशान क्यों हो ?" उसने पूछा।

ममता चुप रही। दुहराकर पूछने पर सिर झुकाकर उसने लज्जा से धीरे-धीरे कहा, "मुझे लगता है, मैं…"

फिर वह रुकी। कहा, "मां बनने वाली हूं।"

बैरिस्टर को झटका लगा। उसने फौरन ही बात को काटा। जानता था काटना व्यर्थ है। कहा, "गलत है, इतने दिन तक तुमने मुझसे कहा ही नहीं।"

"मैं कहती कैसे ?"

मनोहर हठात् रुक गया। वह बैरिस्टर को रमेश की खरीद-फरोख्त

की खबर देने आ रहा था। और यह खबर तो लाजवाब हाथ लगी। इसके ज़रिये तो दोनों से ही खूब रुपये ऐंठ सकता है। सांस रोककर खड़ा रहा। बैरिस्टर को जलाने आया; उलटा बैरिस्टर जला-जलाया ही मिला। भीतर से फिर बातचीत की आवाज़ें आने लगीं।

"बावली ! पर शादी के पहले तो ऐसा होना ठीक नहीं !"

"फिर कुछ इन्तज़ाम करना होगा।"

"ज़रूर। डरो नहीं।"

"अच्छा, मैं जाती हूं।"

शायद वह उठ खड़ी हुई थी।

मनोहर चला गया। ममता बाहर निकली तो हृदय भारी था। उसे बैरिस्टर की बात पर विश्वास नहीं हुआ था। उसको भविष्य का भय विकराल बनकर भयभीत कर रहा था।

ममता गाड़ी में बैठ गई। आज गाड़ी चलाने में भी मन नहीं लग रहा था। जब ममता चली गई, बैरिस्टर बाहर आ गया और उसने पाइप जलाया। नौकर से कहा, "कोई आया था ?"

एक ऐंग्लो-इंडियन लड़की भीतर घुसी।

बैरिस्टर ने कहा, "वैल्कम।"

लड़की ने अंग्रेज़ी में कहा, "आपके कोई मेहमान आई थीं न ? मैं उधर क़मरे में बैठ गई थी।"

बैरिस्टर ने उसको भीतर ले जाकर आराम से बिठाया, और इस तरह ममता को उसने बिल्कुल ही भुला दिया।

ममता घर पहुंची तो उसकी तबियत मिचला रही थी। बाथरूम में गई तो कै की। जी कुछ हल्का हुआ, पर भारी सिर अब भी भारी ही था। चुपचाप दीवार पकड़कर आकर पलंग पर लेट गई। कै की आवाज़ मालती ने सुन ली थी। ममता शांत पड़ी थी।

मालती उसके पास आई।

"बीबी, खाना खा लीजिए।" मालती ने कहा।

"मुझे भूख नहीं···" ममता ने उत्तर दिया।

"इधर कुछ दिन से आपकी तबियत खराब है, डाक्टर को बुलाऊं?"

"नहीं, नहीं..." ममता ने हठात् कहा। उसके स्वर में भय था जो मालती से छिपा न रहा, "अपने-आप ठीक हो जाऊंगी।"

मालती चौंक उठी।

ममता का हृदय भी आशंका से ग्रस्त हो गया था।

"क्या बात है मालकिन!" उसने पूछा।

"कुछ नहीं।" ममता ने तकिये में मुंह छिपा लिया।

मालती पास बैठ गई। सिर पर स्नेह से हाथ फेरने लगी। और सच-मुच जाने क्यों ममता सुबकने लगी।

"मालकिन!" सांत्वना ने हाथ बढ़ाया।

"मालती!" ममता ने सिर उठाया।

"क्या हुआ बीबी! मुझसे क्यों छिपाती हैं? मैं तो आप ही की हूं। आपकी रोटी खाती हूं। क्या आपको मुझ पर भी भरोसा नहीं?"

ममता ने कहा, "भरोसा!" फिर वह सिसक उठी, "किसका भरोसा करूं? कोई नहीं है जिसको मैं अपना मान सकूं। मैं पापिन हूं मालती! मैं मां होनेवाली हूं।" ममता फूट-फूटकर रोने लगी। उसकी हिचकियों ने मालती का हृदय हिला दिया। मालती उठी।

लौटी तो वह पागल-सी हो रही थी। ममता रोती रही। हठात् मालती ने लौटकर कहा, "मालकिन! डरो नहीं, तुम्हारा बच्चा मेरा बच्चा होगा। मुझे दे दें। मैं पाल लूंगी।"

ममता ने मालती को हृदय से लगा लिया। मालती ने रोते हुए कहा, "मालकिन! दुनिया बड़ी बुरी है..." इससे अधिक वह कुछ नहीं कह सकी।

रमेश कपड़े पहनकर खड़ा हुआ तो शोभा जूते पहनाने लगी। रमेश का ध्यान ममता की ही ओर था। उसने शोभा की ओर देखा भी नहीं। अपने ही ध्यान में उसने उससे पूछा, "चम्पा! क्यों आज वह दर्जी ममता के लिए कपड़े लेकर आने वाला था न?"

"जी।" उसने संक्षिप्त उत्तर दिया।

"क्या पूछता हूं !" वह कड़ा पढ़ा।

"आनेवाला था।" शोभा ने फिर टाला।

"फिर ?" रमेश तनिक क्रुद्ध हुआ।

"आया नही।" शोभा ने उसी स्वर से कहा।

"तूने फोन किया था ?" रमेश ने पूछा।

"भूल गई मालिक !" शोभा ने उत्तर दिया।

"भूल गई ? जानती है भूल जाना कितना वड़ा कसूर है ?" वह अब सचमुच क्रुद्ध था।

"मालकिन तो खुद खरीदकर ले आएंगी। वह तो सड़कों पर अकेली घूमती हैं।" शोभा अपनी घुटन को सह नहीं सकी। उगल ही गई। रमेश को आग लग गई। कस के ठोकर घुमाकर मार दी। उस ठोकर से शोभा गिर गई। वह कराह उठी।

"निकल जा वदतमीज !" रमेश ने चिल्लाकर कहा—उसकी चिल्लाहट सुनकर भोला भीतर भागकर आया। उसने देखा—शोभा धरती पर पड़ी थी।

"क्या हुआ मालिक ?" उसने पूछा।

"निकाल इसे यहां से, वदतमीज औरत !" रमेश ने कहा, "ज़वान चलाती है ?"

"मालिक !" भोला अचकचाया।

"शक्ल क्या देखता है ? क्या तू भी जाना चाहता है ?" रमेश गुर्राया।

"अभी लीजिए मालिक, अभी निकालता हूं।" भोला कांप गया।

भोला ने शोभा का हाथ पकड़ लिया और घसीटकर वाहर ले चला।

शोभा द्वार पर फूट-फूटकर रोने लगी। "नहीं जाऊंगी, नहीं जाऊंगी," उसका स्वर घुट-घुटकर निकलने लगा। भोला दया की दृष्टि से देखकर चला गया। वह मजवूर था। सांझ हो गई। सामने से ही देखते-देखते रमेश की कार निकल गई।

रात आ गई। अंधेरा गहरा हो गया। शोभा वहीं रोती रही। भोला कई बार आकर देख गया। रमेश लौट आया। उसने भीतर घुसते समय

देखा कि वहीं उसका अभिमान शिथिल होकर शोभा के रूप में पत्थर पर पड़ा था। रमेश के हृदय में कुछ कसका। क्या सचमुच वह इतना कठोर है?

रमेश उस समय बेचैन था। वह भीतर चला गया। भोला ने खाना लाकर रखा। पर वह उतना स्वादिष्ट नहीं था। थाली हटा दी।

पलंग पर लेटकर उसने फोन उठाया। खट की आवाज़ आने पर उसने स्नेह से कहा, "कौन, ममता?"

ममता सो रही थी। मालती ने घंटी सुनकर फोन उठाया। आवाज़ सुनकर कहा, "हैलो! कहिए!"

"मैं हूं रमेश, सो गई क्या?"

"नहीं; तुमने ही मेरी आंखों की नींद छीन ली है।"

"तुम्हारी याद आती है। नींद ही नहीं आती। बड़ी आकुलता से उस दिन की प्रतीक्षा कर रहा हूं जब तुम इस घर की मालकिन बनोगी।"

"वह दिन भी क्या कुछ दूर है?"

"नहीं ममता!"

"रमेश!" मालती का गला रुंध गया। तो वह यह सब ममता से कह रहा था, उससे नहीं! मालती रोने लगी। मूर्खा है, वहां रमेश को क्या खबर कि यहां मालती रहती है। ममता का कैसा भाग्य है, पर वह स्वयं कितनी अभागिन है, मालती सोचने लगी।

"क्या है?" रमेश ने फोन रखकर पूछा।

"चम्पा रो रही है मालिक!" भोला ने कहा। रमेश ने अधिकार के स्वर से उसे डांटते हुए ही कहा, "अच्छा! बड़ा दर्द आ रहा है? उसे बुला ले। कहना, आयंदा औकात से रहे।

"मालिक, आप बड़े दयालु हैं।" भोला गद्गद हो गया।

"अच्छा जा-जा, अपना काम कर।" रमेश ने कहा और वह ममता के बारे में सोचने लगा। भोला बाहर गया। चंपा रो ही रही थी।

"चंपा!" भोला ने स्नेह से कहा।

"क्या है?" उसने सिर उठाया।

"मेरे कहने से मालिक ने तुझे फिर रख लिया है।"

"सच ? मालिक बड़े अच्छे हैं।" चंपा ने पुलककर कहा।

"और मैं ?" भोला ने पूछा।

"अपनी जगह तुम भी ठीक हो।" चंपा ने कहा और आकर रमेश के पांवों पर लोटकर रोने लगी।

रमेश मुस्करा दिया।

19

भोर हो गई थी। बादल गरजकर प्रिम-प्रिम करते हुए झूम रहे थे।

शोभा चाय की ट्रे लेकर आई तो रमेश ने आकाश से दृष्टि हटाकर कहा, "चंपा, जरा वह फोन लाना।" वह लाई। रमेश फोन करने लगा।

"हलो ममता! आज कितना सुहावना दिन है! आओगी···मैं तुम्हारा इन्तज़ार करूंगा···हां, दरवाज़े पर ही।" शोभा का दिल कसमसा उठा। बादल के दिन पराई स्त्री को उसके सामने निमन्त्रण। शोभा ने चाय का प्याला बढ़ाकर कहा, "मालिक! चाय!"

"ममता आ रही है, साथ ही पिएंगे," रमेश ने कहा। वह इतना उल्लसित हो गया था कि शोभा चौंकी। रमेश बाहर खड़ा हो गया था। शोभा उसके पीछे-पीछे चली गई। वह विभोर दिखता था। और शोभा खड़ी चुपचाप उसे देखती रही।

ममता घर से चलने को हुई ही थी कि गाड़ी भीतर घुसी। उससे उसका बैरिस्टर उतरा। वह चौंकी। बैरिस्टर ने कहा, "क्या सुहावना दिन है! कहीं चलो। सैर कर आएं।"

"नहीं, मेरी तबियत ठीक नहीं है।" ममता ने टाला।

"तबियत," वह हंसा, "यों ठीक होती है, यों।" उसने चुटकी बजाई और उसका हाथ पकड़कर कहा, "चलो।"

मालती ने देखा और आंखें झुकाकर भीतर चली गई। उसे अत्यन्त ही घृणित लगा वह व्यक्ति। पर वह क्या करती ?

पानी तेज़ हो गया था। मोटर चली गई थी। मालती देखती रही।

इधर शोभा ने अपना मौन तोड़ा।

"मालिक, अन्दर चलिए।" उसने कहा।

"नहीं, ममता आती होगी।" रमेश के उत्साह ने उत्तर दिया।

"आप भीग गए हैं," शोभा ने याद दिलाया। रमेश मुड़ा, उसने देखा और सहानुभूति से कहा, "तू भी भीग गई है। जाकर कपड़े बदल। पराए मर्दों के सामने ऐसे नहीं आया करते बदतमीज़ !" हठात् उसकी दृष्टि भीगे वस्त्रों में से झांकते शोभा के पुष्ट अंगों पर पड़ गई थी।

"आप तो मेरे मालिक हैं। जिनकी रोटी से देह पलती है, उनके सामने अपना सुख-दुःख क्या ?" कहकर शोभा नहीं हटी। वहीं खड़ी रही। रमेश उस बात से खुश हुआ। पर झेंपा भी।

परन्तु ममता नहीं आनी थी, नहीं आई। बैरिस्टर उसके रूप की अन्तिम बूंदें पी रहा था।

वह दिन-भर घर रहा। रात को वह जल्दी ही बिस्तर पर पड़ गया। उसका सिर भारी हो रहा था।

"मालिक, खाना नहीं खाएंगे ?" चंपा ने आकर पूछा।

"नहीं, तबियत खराब है।" रमेश ने करवट बदलकर कहा।

"आपको तो बुखार है," उसने छूकर कहा। पता नहीं वह इतना साहस कैसे कर गई। और शोभा को ध्यान आया, ममता नहीं आई, कहीं उसकी तो चिन्ता नहीं है यह ? उसने सुनाते हुए कहा, "मालिक ! मैं डाक्टर बुलाती हूं।"

"नहीं, अपने-आप बुखार उतर जाएगा।" रमेश ने मना किया।

पर शोभा बैठी रही। घड़ी ने साढ़े नौ का एक डंका बजाया। शोभा वहीं बैठी रही। रमेश सो गया। देर तक वह उसका मुख देखती रही। उसे उससे सुन्दर कोई मुख ही नहीं दिखाई दिया। यह भारतीय नारी की पुरातन विचारधारा, जिसमें उसे पति को देवताओं से भी अधिक सुन्दर

मानने की शिक्षा दी गई है, आज मन भर रहा है। वह उसके पास बैठी है जिसको अपना सर्वस्व मान चुकी है। आज वह उसी की छाया में सो रहा है।

रात के दो बज गए। रमेश की आंख खुली।

कहा, "कौन ? चम्पा ?"

"मालिक !"

"सोई नहीं ?"

"आपकी तबियत ठीक नहीं है।"

"मामूली ठंड का बुखार है। जाओ, सो रहो।"

तब उसे याद आया—यह बुखार ममता का स्नेह लाया है। उसे ईर्ष्या हुई। पर उसने कहा, "सो जाऊंगी। आप सो जाएं।"

× × ×

सुबह शोभा जब चाय लाई, रमेश पलंग पर जागा पड़ा था।

"अब तबियत कैसी है ?" रमेश से पूछा। यदि घूंघट न होता तो वह देखता कि शोभा के नैन रतनारे हैं। रात-भर जागी है।

"ठीक है चम्पा," उसने सांस भरकर कहा, "आदमी कितना भी धनी हो, पर आदमी को आदमी का ही सहारा सबसे बड़ा होता है। ऐसे मौकों पर घर का ही आदमी काम आता है।" फिर सोचा, क्या ममता ऐसे जागती जैसे शोभा ? नहीं। वह सो गई होती। यह गंवार इतने हमदर्द क्यों होते हैं ? फिर रमेश मन ही मन हंसा। एक स्त्री को देखकर ऐसा साधारण नियम बनाना तो अनुचित है। सब ऐसे कहां होते हैं ? गांव वाले आपस में कितना लड़ते हैं ! पूछा, "तू रात-भर जागती रही। क्यों ?"

"जिसका नमक खाती हूं उसकी सेवा करना तो धरम है।"

रमेश प्रसन्न हुआ। कहा, "मैं तुझसे खुश हूं चंपा। भोला भी बड़ा अच्छा नौकर है। मुझे कोई भी तकलीफ नहीं होने देता। तेरा उससे ब्याह करा दूंगा तो तुम दोनों यह घर अपना जैसा समझकर संभाल लोगे।"

शोभा सिर झुकाकर चली गई।

जब भोला ने देखा तो पूछा, "चंपा !"

"क्या है ?"

"तू रोती क्यों है ?"

"रोती कहां हूं।"

उसका सुन्दर मुंह देखकर भोलाराम वैसे तो हिम्मत नहीं करते थे, पर दिल में उनके भी मोमबत्ती पिघलने लगी थी। पूछा, "तुझे बहुत दुःख है ?"

"दुःख ! नहीं, मुझे कोई दुःख नहीं है।"

भोला चला गया। कुछ देर बाद आकर बोला, "मालिक जा रहे हैं।"

वह उठी, कहा, "कहां ? इस कमजोरी में कहां जा रहे हैं ?"

"कहते हैं दफ्तर जाना बहुत जरूरी है।"

"मैं देखती हूं।"

पर जब तक वह पहुंची, रमेश की कार चली गई थी। वह घर के काम में लग गई। घंटे-भर बाद उसने सुना, दो आदमी बाहर बातें कर रहे थे। जाकर झांका। बुरा आदमी भोला से बातें कर रहा था। जब से मनोहर ने ममता के यहां शोभा को घूरा था, उसकी इच्छा होती थी कि मनोहर की आंखों को उंगली डालकर निकाल ले।

मनोहर कह रहा था, "मुझे तुम्हारे मालिक ने भेजा है। देखो वह दफ्तर में···हां, सुनो···मुझे ले चलो वहां कमरे में···"

"आपको क्या चाहिए ?" भोला ने पूछा।

"अच्छा," मनोहर ने कहा, "तुम ही ले आओ, मेज पर जो लाल फाइल है।"

"लाता हूं सरकार।"

भोला फाइल लेकर चला तो शोभा ने कहा, "यह क्या लिए जा रहे हो ?"

"देख।" भोला ने दिखाया।

"क्या है यह ?" शोभा ने पूछा, "अगर जरूरी चीज हुई तो ? तू इस आदमी को जानता है ?"

"जानता हूं। मनोहर बाबू हैं।"

"ठहर जा।" कहकर उसने फोन उठाया. नम्बर मिलाकर कहा, "जी हां, मनोहर बाबू हैं···लाल कापी मांगते हैं, आपने मंगाई है···अच्छी बात

है, नहीं दूंगी। आप तुरन्त आइए।"

मनोहर ने जो सुना तो एकदम सफेद पड़ गया। तौबा ! तौबा ! इस औरत ने तो सारा मामला ही चौपट कर दिया।

भोला ने लौटकर शोभा से कहा, "वह बाबू तो वहां नहीं हैं।"

"और तुम उसे यह कापी उठाकर दे रहे थे?"

भोला लज्जित हुआ। कुछ ही देर में गाड़ी रुकी। रमेश तेज़ी से भीतर आया।

"चंपा !" उसने पुकारा।

"मालिक !"

"कहां है वह फाइल?" व्यापारी के स्वर में अकुलाहट थी।

"यह रही।" चंपा ने फाइल सामने रख दी।

रमेश गद्‌गद हो गया। उसने भरे स्वर से कहा, "चंपा, तू स्त्री नहीं, देवी है। तूने मुझे बर्बाद होने से बचा लिया। इस फ़ाइल में सरकारी आर्डर थे। अगर यह खो जाते तो लाखों रुपये अटक जाते और वक्त पर रुपये का भुगतान न देकर मैं दिवालिया हो जाता।"

चम्पा निर्विकार रही। पर बरबाद शब्द अभी गूंज रहा था। उसने सिर झुका लिया।

"तेरा इतना बड़ा अहसान हुआ है," रमेश कहता गया, "कि मैं तुझे कभी भूल नहीं सकता। किसी व्यापारी ने मनोहर को रुपये देकर चोरी करने भेजा होगा। उसे तो मैं ठीक कर दूंगा, पर अगर तू न होती तो न जाने मेरा क्या हाल हो जाता। चम्पा ! मांग ! तू क्या मांगती है?"

वह चुप रही।

"मांग चम्पा ! आज हम किसी भी चीज़ के लिए मना नहीं करेंगे।"

चम्पा ने धीरे से कहा, "विश्वास करती हूं। मुझे कुछ नहीं चाहिए। बस, जीवन-भर आपके चरणों की सेवा करना चाहती हूं।"

"बस !" रमेश अवाक् हो गया। फिर कहा, "मैंने आज तक तुझ जैसी स्त्री नहीं देखी।"

"कहीं फिर मुझे नाराज़ होकर निकाल न देना मालिक !"

रमेश ने झेंपकर कहा, "नहीं, अब तू इस घर से कभी न जा सकेगी चम्पा !"

20

क्लब के भीतरी कमरे में ममता ने कहा, "मैं दूसरी बार कह रही हूं..."

बैरिस्टर ने उसका जवाब न देकर कहा, "मैंने सुना है, तुम रमेश नाम के किसी सेठ पर फिदा हो गई हो ?"

ममता हंसी। कहा, "झूठ ! मैं तो सिर्फ उससे रुपया ऐंठ रही हूं।"

बैरिस्टर मुस्कराया। बोला, "शाबाश ! मुझे तुमसे यही आशा थी।"

"लेकिन अब मैं क्या करूं ?" ममता ने कहा, "बात जल्दी ही ज़ाहिर हो जाएगी। और तब मैं कहीं की भी न रहूंगी।"

"घड़े में जलनेवाला चिराग बाहर रोशनी नहीं फेंकता।" बैरिस्टर ने सिर हिलाया।

"मैं यह सब सुनना नहीं चाहती।" उसके स्वर में तेज़ी थी।

"देखो मिस ममता !" बैरिस्टर ने कहा, "नाव जब पानी में तैरती है तो भीग भी जाती है।"

इस 'मिस' शब्द का व्यंग्य ममता को कचोट गया। बैरिस्टर कुछ और सोचने लगा था। ममता ने कहा, "नाव भीगी तब तक ठीक था, पर अब तो डूब रही है।"

"छिः," बैरिस्टर ने कहा, "क्या कहती हो ? नाव का पानी उलीच दो, सब ठीक हो जाएगा।"

ममता थर्रा गई। पर उसके पास और चारा भी क्या था ? वह हाथों पर सिर रखकर बैठ गई।

रात के ग्यारह बजे थे। मालती बिस्तर पर बैठी सोच रही थी। उसे

लगा अंधेरे में छिपकर कोई बाईं ओर गया है। वह आशंकित हुई। उसे लगा कोई कमरे में घुसा है। वह चुपचाप पांव दबाकर चलने लगी। उसका सोचना ठीक था। कोई सेफ खोलने की कोशिश कर रहा था।

मालती को डर लगा। निश्चय ही कोई चोर है। इच्छा हुई फोन करके पुलिस को बुला ले। पर फोन तो उसी कमरे में रखा है। उसे झुंझलाहट हुई। मालकिन अभी तक नहीं आई। बाहर जाकर चौकीदार को चुपचाप ढूंढ़ा। वह भी नहीं था। न जाने कहां चला जाता है कमबख्त। उसे इसमें देर होने लगी। लौटकर सुना खड़-खड़ अब भी हो रही थी। तब तो भागा नहीं है। वह बहुत धीरे से भीतर घुसी। चोर व्यस्त था। मालती ने बिजली का बटन दबा दिया। एकदम उजाला फैल गया। बत्ती जलते ही दोनों ने एक-दूसरे को देखा। मनोहर जेबों में रुपये और गहने भरे हुए था।

मालती हंसी। मनोहर हक्का-बक्का खड़ा रहा। "अच्छा, आप हैं ?" मालती ने कहा, "वही तो मैं कहूं, आज तक तो कोई आया नहीं। आया नहीं, कि चौकीदार तक की आदतें बिगाड़ दीं। और आज देखती हूं तो आलमपनाह तशरीफ लाए हैं। तस्लीम अर्ज़ करती हूं।"

"मालती, तुम यहां ?" मनोहर का चेहरा सुर्ख हो गया था। पर वह कुछ भी समझ नहीं पा रहा था। यह ममता का घर था, फिर यह कहां से आ गई ?

"क्यों ?" मालती ने कहा, "कुछ आपको परेशानी-सी नज़र आ रही है। अपना राज़ बताऊं ? रमेश बाबू की याद ने मुझे बेचैन कर दिया था। तब से ममता बीबी की नौकरानी बनकर रहती हूं···"

मनोहर कांप उठा। आज वह यह सब क्या देख रहा है। पकड़ा भी है उसे तो किसने ? "लेकिन···लेकिन···" उसके मुंह से निकला और फिर हलक में से आवाज़ नहीं निकल सकी। उसकी घबराहट इतनी स्पष्ट थी कि वह मालती से छिपी नहीं।

वह हंसी। उसके उस हास्य में घृणा कूट-कूटकर भरी थी, अब झर-झरकर बिखर चली। मनोहर चुपचाप खड़ा रहा। मालती ने अपनी हंसी रोककर अन्त में उससे रुककर कहा, "चोर !" विद्रूप बज उठा।

"मालती !" मनोहर ने हाथ हिलाकर कहा। उसके स्वर में एक कंपन था, भय था, "तुम भूल रही हो। पाप का धन इसी तरह जाना चाहिए। चलो, हम-तुम कहीं दूर···"

वह हंसी, बहुत ज़ोर से हंसी। आज जैसे वह उसे झुकाने पर ही आमादा हो गई थी। उसने बड़े नखरे से आंखें मांचकर प्रेम से कहा, "कब से तुम्हारी राह देख रही थी। आखिर आ गए हो। बहुत दूर जहन्नुम चले चलें।" और एकदम उसने फूत्कार करते हुए घूरकर कहा, "पाप का धन? पाप! पाप में स्त्री को कौन डालता है?" उसने उंगली उठाकर इशारा किया, "तुम जैसे कमीने, रमेश जैसे···"

रमेश का नाम सुनकर मनोहर को हठात् वह दिन याद आ गया जब वह अन्तिम बार मालती को ढूंढ़ने गया था।

"रमेश! रमेश करोड़पति है।" उसने कहा।

"जानती हूं। फिर भी नहीं गई हूं, क्योंकि मैं जानती हूं कि वह मुझे अब नहीं पहचानेगा।" मालती ने मुख विकृत करके कहा।

"तुम मुझ पर विश्वास करो मालती," मनोहर ने मीठे स्वर से कहा। हो सकता था कि कभी मालती उस स्वर से बहक जाती। पर जीवन की कठोरता और पवित्रता के संयम ने उसे विवश किया, "विश्वास···चोर!" उसने कहा, "तेरा विश्वास करूं!" और मालती एकाएक चिल्लाई, "चोर! चोर!! चोर!!!"

"मालती!" मनोहर क्रोध से चिल्लाया, "मैं तेरी वास्तविकता खोल दूंगा।"

"आज इस बेला बहुत देर हो गई मनोहर!" मालती ने कहा और चिल्लाई, "चोर! चोर!"

मनोहर ने गुलदस्ता उठाकर उस पर फेंककर मारा। मालती उछलकर बच गई। तब मनोहर ने पास पड़ी लोहे की छड़ उठाकर उस पर हमला किया। उसने उसके सिर पर हाथ भरपूर जमाया। मालती खड़ी रही। उसके सिर से खून बह निकला। तब वह भूखी बाघरी की सी दिखाई दी। उसके नेत्रों से चिनगारियां-सी निकलने लगीं। मनोहर डर गया। पर वह जितना डरा, उतना ही क्रूर बनकर उस पर वार करता

गया। उसकी भयानक चोटों से मालती की पसलियां टूट गईं। और जब तक दम रहा, वह उससे जूझती रही, पर विवश हो अन्त में मूर्च्छित होकर गिर गई।

लहू से फर्श भीग गया था। मालती अचेत पड़ी थी। लहू के जो छींटे मनोहर के हाथ पर गिर गए थे, मनोहर ने उसकी साड़ी से ही पोंछ दिए। सिर फटकर रक्त का फव्वारा वह रहा था।

मनोहर पागल-सा खड़ा रहा···।

देखता रहा···मालती···उसके दांत टूट गए हैं, छड़ ने गाल की खाल काट दी है। बायां हाथ लटक गया है, लड़ाई-झपट्टा में उसकी साड़ी खुल गई है, केवल पेटीकोट रह गया है, जिसको जांघ से बहते खून ने तर-बतर कर दिया है, मालती बेहोश पड़ी है···

यह उसने क्या किया···

बाहर मोटर का हार्न बजा। कोई गाड़ी भीतर आ रही है।

मनोहर को होश आया। परिस्थिति की गर्मी उतरी।

वह हत्यारा है ! हत्यारा !

एकाएक मनोहर को भय ने ग्रस लिया। उसे लगा—वह घिर गया है। वह भयभीत हो उठा और बाहर भागा। जब कोई राह नहीं दिखी, वह खिड़की में से बाहर कूद गया।

ममता भीतर घुसी। उसने पुकारा, "मालती !"

कोई उत्तर नहीं आया।

फिर पुकारा, "मालती !"

फिर भी कोई उत्तर नहीं मिला। तब वह शंकित हुई। भीतर बत्ती तो जल रही है। सेफ वाले कमरे में। क्या मालती कहीं कुछ···।

वह आगे बढ़ी। एकाएक जो दृश्य दिखाई दिया, उससे उसके रोंगटे खड़े हो गए। वह चिल्ला उठी, फिर ध्यान आया।

"हलो ! पुलिस स्टेशन···"

उसने जल्दी से फोन उठाकर हांफते हुए फोन किया, "खून···खून, जी हां···फौरन आइए··"

फोन करके टेलीफोन छोड़कर आगे आई। कमरे में देखा। मालती

पड़ी थी। रक्त से फर्श भीगा है। किसी के जूतों के निशान हैं। जूतों के तले रक्त से ही भीग गए थे। खिड़की से भागा है।

फोन की घंटी बजी।

"कौन है?" उसने चोंगा उठाया। सुना। थाने से सिपाही चल दिए थे। संतोष हुआ। कहा, "चोरी…हाय-हाय…चोरी भी…।"

वह कह न सकी। गला रुंध गया। उसकी आंखों के सामने अन्धेरा-सा छा गया। उसने बैरिस्टर को फोन किया। कहा, "जल्दी आओ। मैं डर रही हूं। एकदम अकेली रह गई हूं…जी हां, खून भी…"

बैरिस्टर ने कहा, "वह कल आएगा। सुबह, डरे नहीं।"

तब ममता ने लगातार डाक्टर कपूर को फोन किया। कुछ देर बाद जब लाइन मिली, कहा, "कौन? डाक्टर कपूर! फौरन आइए।"

डाक्टर ने स्वीकार कर लिया। ममता शेरनी की तरह गरजी नहीं। बैरिस्टर! और शब्द गूंजा बैरिस्टर!! तुम नहीं आ सकते!! पर उसका क्रोध निकास नहीं पा सका। बाहर उसी समय डाक्टर कपूर की पगध्वनि सुनाई दी।

कितनी भली थी यह स्त्री ! किन्तु इसका क्या अन्त हुआ है ? भयानक ! कितनी बर्बरता से मारा है उसने इस स्त्री को ?

बिचारी ने मेरे लिए जान तक दे दी । ममता रोई । पट्टियों में मुंदी हुई निर्विकार शांत मालती पड़ी थी, ममता उसके सिरहाने बैठी रही, बैठी रही ।

सुबह होने लगी । ममता की आंख खुली । उठी और मुंह खिड़की में से निकालकर ठंडी हवा के झोंकों की थपकियां लगवाती रही । उसका सिर अभी तक भारी था । मालती पड़ी ही थी । ममता ने थोड़ी ब्रांडी उसके मुंह में डाली । वह कुछ जागी । होंठ फिर हिले । आंखें खोलीं ।

"कैसा जी है ?" ममता ने कहा ।

मालती बोल नहीं सकी । केवल आंसू आंखों के कोनों से कनपटियों पर बह गए । और ममता को हठात् याद आया । मालती ! किसलिए पड़ी है वह ! ममता के लिए ! और बैरिस्टर !···

ममता के दांतों ने उसका होंठ काट लिया ।

21

रमेश ने अखबार खोला था । भोर का समय था । देश और विदेश की खबरें पढ़ते हुए वह अचानक ठिठक गया । शोभा चाय लेकर आई थी । किन्तु रमेश को उसका आना मालूम भी न हुआ । वह अपने अखबार में तल्लीन रहा । कुछ देर प्रतीक्षा करने के बाद शोभा ऊब गई । उसे चाय ठंडी हो जाने का भय हो आया । उसने साहस बटोरकर बहुत धीरे से ही कहा, "बाबूजी, चाय ।"

"रख दे । तू जा !" रमेश ने बिना उसकी ओर देखे हुए कहा । शोभा का मन फिर कचोट उठा । क्या वह सचमुच इतनी अयोग्य थी कि उसकी ओर वे देख भी नहीं सकते थे ? उसने प्याला रख दिया और बगल के कमरे

में चली गई। गई क्या, वह उसे वहां से देखती रही। वह इस मनुष्य को अभी तक समझ नहीं सकी थी।

"मनोहर! चोरी! ममता के घर!" रमेश के मुख से अस्फुट शब्द निकले। शोभा ने भी सुना। ममता के घर! उसे प्रसन्नता हुई। प्रति-स्पर्धा। पापिन! कौन बुरा हुआ? और मनोहर वही तो है आवारा। ठीक हुआ।—इसी समय बाहर के कमरे में कुछ आहट हुई।

"कौन?" रमेश ने कहा। कोई उत्तर नहीं मिला। तब रमेश स्वयं उठकर उस कमरे में गया। शोभा बगल के कमरे में चली गई।

"मैं हूं रमेश, मैं। मुझे छिपने की जगह बताओ।" सामने बदहवास-सा मनोहर खड़ा था। उसकी आंखें आज कुछ बड़ी दिखाई देती थीं, जिनमें सफेदी अधिक थी, वह शायद रात-भर का जागा था क्योंकि उसकी मुद्रा में अस्वाभाविक सुस्ती थी। वह कातर स्वर से अपनी रक्षा के लिए याचना कर चुका था।

"आखिर तुम आ गए!" रमेश ने घूरकर कहा। उसके स्वर में एक निश्चित कठोरता थी। जैसे अब जो मनोहर फंस गया है उसे वह जाने नहीं देगा। मनोहर उसके भाव को क्षणभर देखता रहा। फिर उस पर जैसे जुगुप्सा ने प्रभाव जमाया। वह उससे कहने लगा, "जानते हो जब अक्ल-मन्द आदमी खतरे में पड़ता है तो वह अपने लिए सुरक्षा की जगह खोजता है।" अचानक ही जैसे मनोहर का भय समाप्त हो गया था और वह अब टक्कर लेने के लिए तैयार खड़ा था। उसका वह परिवर्तन देखकर शोभा को काफी आश्चर्य हुआ।

"तो तुम्हें मेरा ही घर पुलिस से बचने की सबसे अच्छी जगह दिखाई दी?" रमेश ने कमर पर दोनों हाथ रखकर व्यंग्य से पूछा।

"पैसे वाले के घर में सब कोई नहीं घुस सकता। चोर ही जान पर खेलकर घुसता है।" मनोहर मुस्कराया। बड़ी कीमती थी यह उसकी मुस्कराहट, जैसे धधकती ज्वाला के छोर पर ललाई दिखाई दी हो।

"लेकिन मैं तुम्हें इंसान समझता था और तुम एक चोर हो।" रमेश ने कटुता से उस पर प्रहार किया। उसका हास्य कमरे में गूंज उठा। किन्तु उससे भी ऊंचे स्वर में मनोहर हंसा, हंसा कि रमेश स्तब्ध हो गया। मनो-

हर ने विभोर होते हुए कहा, "अच्छा जी ! तुम अंधे हो गए हो ? तुमको मैं इन्सान नहीं दिखाई देता ? इन्सान क्या ? मैं तो तुमको हैवान दिखाई देता हूं ?" मनोहर फिर हंस दिया। उसका वह कठोर हास्य रमेश के क्रोध को बार-बार जगाने लगा।

बगल के कमरे से शोभा ने चुपचाप फोन उठाकर पुलिस चौकी में सूचना दी—"जी हां, रमेश सेठ के घर से बोलते हैं। उन्होंने मनोहर को बातों में फांसकर रोक रखा है, तुरन्त आइए, वरना शिकार के हाथ से निकल जाने का पूरा खतरा है।" फोन करके शोभा को आन्तरिक संतोष हुआ।

"हैवान भी इतना नीचे नहीं गिरता बुज़दिल; जितने तुम गिर गए हो। जिसके बल पर खाते थे उसी का नुकसान करने लगे ? ममता के बल पर तुम समाज में पलते थे··" रमेश का वाक्य हठात् ही मनोहर ने काट दिया। वह एक बार सिर उठाकर तिक्तता से हंसा, नितांत कटुता से, "समाज ? जिसे ज़रूरत थी उसे मैंने हमेशा मदद की है। अरुणा से कहा कि किताब के नाम पर रुपया ले आ, तुमसे मैंने कहा कि वह रूप बेचने आएगी।" वह हंसा। और अब वह हास्य सारे संसार को जघन्य समझने के उपलक्ष्य में था। मनोहर ने हाथ फैलाए जैसे एक बिलकुल नई बात कह डाली, "जब दुनिया है ही बेवकूफों की तो क्यों न उससे वैसा ही काम लिया जाए ? मनोहर कभी गलती नहीं करता रमेश ! न मैं किसी का दोस्त हूं न दुश्मन। पैसा—" मनोहर ने सिर हिलाकर अपनी बात पर गहरा ज़ोर दिया, "पैसा सबसे बड़ी चीज है। ममता किस कीमत पर समाज में रोटी पाती है, यह कौन नहीं जानता !"

रमेश चिल्लाया जैसे वह यह कभी नहीं सुनना चाहता था। शोभा ने सुना, रमेश चिल्ला उठा, "चुप रह कुत्ते ! ममता के खिलाफ मैं कुछ भी नहीं सुन सकता।"

मनोहर ने ऐसे आश्चर्य से देखा जैसे शीशे के हौज़ में तैरती सुनहली मछली को देखकर बच्चे खुश होते हैं।

"तुम नहीं सुन सकते ? तुम ? क्योंकि तुम एक खामोश बेवकूफ हो।" मनोहर ने चुटकी ली और फिर वह मुस्कराया।

"खामोश बेवकूफ नहीं कुत्ते ! मैं एक खामोश तूफान हूं। हवा का एक-एक झोंका, आकाश की एक-एक तपिश और जलन की भभकती भाप, सबको अपने सीने में इसीलिए दबाए जी रहा हूं कि तब तक नहीं बोलूंगा जब तक अपनी मंज़िल को नहीं पा लूंगा। मैंने आसमान को चुनौती देकर···" रमेश का उत्तेजित स्वर इस समय अपने-आप लरज गया। वह दृढ़ता से कहता रहा, "जब अपने खम ठोंके हैं तो समन्दर ने करवटें लेकर कहा है—रमेश ! दो दिन और ठहर !" उसके कहने का ढंग नितांत वास्तविक था। किन्तु फिर भी मनोहर प्रभावित नहीं हो सका। रमेश ने ही कहा, "मनोहर ! ज़िन्दगी-भर ऐसे रह सकता हूं जैसे इस दुनिया में मैं कभी नहीं रहा। लेकिन तुम्हारी तरह कमीना नहीं हो सकता।"

इस चोट से मनोहर तिलमिला गया। "कोई आंखें निकलवाने को बाज़ पाले और वह पालतू अगर अपने मालिक की ही आंखें खोजने में लग जाए तो ?" मनोहर ने घृणा से कहा, "मैं कमीना हूं ? इसलिए कि आज पुलिस मेरे पीछे है ? लेकिन मेरा कसूर है दौलत। दौलत के लिए इन्सान क्या नहीं करता ?" मनोहर आगे बढ़ा। उसकी मुट्ठियां तनी हुई थीं।

शोभा इस समय चौकन्नी हो गई। क्या यह हमला करेगा ? किन्तु वह उसका भ्रम था। मनोहर जिस गौरव से अकड़ा था उसी वैभव से सिमट गया, जैसे सारा जेठ तपकर अन्त में पड़वा गल गई थी, जिससे वर्षा टल गई थी। "दौलत !" रमेश ने फूत्कार किया। वह अपने कठोर अभिमान के हत्थे पकड़कर श्लाघा की सीढ़ियां चढ़ते हुए बोला, "दौलत इंसान को अन्धा नहीं बना सकती। मैंने···" उसने काफी ज़ोर देकर मनोहर को घूरकर कहा, "मैंने ईमान से काम लिया है।"

किन्तु मनोहर पर से वह बात ऐसे फिसल गई जैसे चिकने घड़े पर से पानी की बूंद, या वेश्या की आंखों से स्त्री-सुलभ लज्जा।

"ईमान !" उसने एक बार कहा। हठात् वह गंभीर हो गया। उसका स्वर खिच गया। उसने कहा, "आज की दुनिया में बिना बेईमानी किए कोई इतना पैसा कमा सकता है ?" उसने असंभव के रूप में सिर हिलाया, "तुम व्यापार करके समझते हो कि तुम ईमान की ज़िन्दगी बिता रहे हो !

लेकिन क्या तुम्हारा व्यापार चोरबाजारी और सट्टे पर नहीं पलता ? अगर तुम किसी का पेट नहीं काटते तो तुम्हारे पास इतनी दौलत कहां से आती है ?" उसने भौं उठाकर पूछा। इस समय उसका स्वर सधा हुआ था, "गुनाहों के लबरेज़ प्याले से मौत के झाग गिरते हैं रमेश !"

एक चोर के मुख से यह पैगम्बरी भाषा सुनकर रमेश मन-ही-मन सुलग उठा। इसी समय द्वार पर पुलिस दिखाई दी। मनोहर ने रमेश को ऐसे देखा जैसे आज वह संसार के सबसे नीच मनुष्य के सामने खड़ा था।

दारोगा मोटा आदमी था। उसने कहा, "भागने की कोई कोशिश न करो। बाहर सिपाही तैनात कर रखे हैं। समझे ?" और फिर उसने अत्यन्त कृतज्ञता से रमेश से मुड़कर कहा, "माफ कीजिएगा। हमें अभी आपकी मदद से पता लगा। हम आपके शुक्रगुज़ार हैं। ऐसे शरीफ गुण्डों ने तो नाक में दम कर रखा है।" रमेश को आश्चर्य हुआ। भीतर शोभा खांसी। रमेश के होंठों पर मुस्कराहट आ गई···तो यह चम्पा का काम है। कितनी चतुर स्त्री है। नौकरानी है पर कितनी समझदार है।

रमेश ने कहा, "यह इसी लायक है।"

मनोहर हंसा। उसने अत्यन्त स्वाभाविकता से हथकड़ियों वाले हाथ को झनझनाकर कहा, "हर हारा हुआ बादशाह एक दिन इसी तरह पकड़ा जाता है। लेकिन बेवकूफ ! खामोश बनकर तू जो दूसरों से किताबें लिखा-कर अपने नाम से छपवाने को रुपया दे सकता है, एक तितली की हवस में इतना अंधा और स्वार्थी बन सकता है, याद रख तेरी बरबादी पास आ रही है। तू जिस ममता पर रीझ रहा है वह तेरी नहीं है। उसे बैरिस्टर तबाह कर चुका है।"

रमेश की आंखों में खून उतर आया। इतने नये आदमियों के सामने उसने उसका इतना अपमान किया था। शोभा ने भी सुना। वह निश्चय नहीं कर सकी कि यह ठीक है या नहीं। रमेश चिल्लाया, "खबरदार ! आगे बढ़ा तो ज़बान खींच लूंगा।"

मनोहर मुस्कराया।

दारोगा ने कहा, "चलो, चलो।" फिर मुड़कर रमेश से कहा, "हुज़ूर, यह बदमाश बड़ा छंटा हुआ नज़र आता है।"

पर रमेश ने वह सब नहीं सुना। वे सब चले गए। कमरे में सन्नाटा गहराकर बैठ गया, पर रमेश खड़ा रहा, खड़ा रहा। वह जैसे स्तब्ध हो गया था। आज यह उसने अंतिम क्षण में क्या कहा था।

"बाबूजी !" शोभा ने धीमे से कहा।

"क्या है चम्पा !" रमेश चौंका।

शोभा प्रयत्न करके भी कुछ नहीं कह सकी।

रमेश ने ही पूछा, "कुछ कहना है ?"

शोभा ने उत्तर दिया, "नहीं मालिक !"

पर वह सब कुछ उंडेल देना चाहती थी। मनोहर ने यह सत्य ही कहा था। बैरिस्टर ममता के पास आता था। मालती से शोभा की बातें होती थीं। पर वह कहे कैसे ? क्या रमेश उस सबको सुन सकेगा ? कभी नहीं। क्या करे वह ? साहस करके कहा, "मालिक !"

"क्या है ?"

"एक बार बीबी को देख आइए न ? मन का दुःख मिट जाएगा।"

"चम्पा !" रमेश ने फुंकारकर कहा, "वह ऐसी नहीं है।"

"यही मैं कहती थी मालिक !" शोभा ने धीमे से कहा।

रमेश रुक नहीं सका। गैराज में जाकर मोटर निकाली। शोभा ने देखा, अब काफी तेज़ी से मोटर दौड़ने लगी।

रमेश ममता के घर गया है, क्यों ? शोभा के सामने ही वह चला गया है। शोभा का मन किया दीवार से जाकर अपना सिर टकरा दे। व्यर्थ है उसका स्त्रीत्व। क्या है ममता में जो इस मनुष्य को उधर खींच ले जाता है ? एक ही बात समझ में आई। जो सहज प्राप्य है, उसमें मनुष्य को कोई रुचि नहीं है। जो पाना कठिन है, उसके लिए वह परिश्रम करता है और श्रम मनुष्य को अपने-आपमें ही नहीं, अपने फल के कारण सुन्दर प्रतीत होता है। वह सिसक उठी। पर रमेश इस समय उद्वेग में था। उसने ममता के द्वार पर गाड़ी रोक दी। रोड मास्टर ब्यूक रुकी तो सर्र से, चुपचाप रमेश तेज़ी से उतरा, पर यहां पांव ठिठक गए।

कोई बहुत दूर से रेशमी सपनों में भूला हुआ चला आ रहा हो, और

अन्त में पत्थर की ठोकर लगे तो वह क्या करे? यही हाल रमेश का हुआ। मनोहर के शब्द वार-वार कानों में गूंजने लगे। रमेश जाकर वरामदे में खड़ा हो गया। भीतर कुछ उत्तेजित वातचीत हो रही थी। एक स्वर निश्चय ही किसी पुरुष का था। कौन है वह ? ममता आवेश में क्यों है ? आज उसका स्वर इतना विकृत और भर्राया हुआ-सा क्यों उठ रहा है ? यहां आकर रमेश के सामने प्रत्येक वात रहस्य वनकर उपस्थित हुई। वह समझने के प्रयत्न में खड़ा द्वार पर से सुनने लगा। जानता था यह सभ्य नियमों के विरुद्ध है पर वह अपनी जिज्ञासा को रोक न सका। कोई हंसा। और उस हास्य में अवमानना की अभिव्यक्ति निश्चय ही अत्यन्त मुखर थी। मकान में एक नीरवता छा रही थी। और तभी रमेश के हृदय का वस्त्र कील में अटककर फटता चला गया। ममता, उसने सुना, उद्विग्न स्वर से कह रही थी, "कमीने! तूने मुझे कहीं का भी नहीं छोड़ा। तूने मुझे वरवाद कर दिया। आज मैं गर्भवती न होती तो एक करोड़पति की वीवी होती।"

"पर जव करोड़पति न था तव मेरे सिवा और कौन था? मैं हुस्न के फूलों का भंवरा था और तुम दौलत के फूलों पर मंडरानेवाली तितली।" उत्तर में व्यंग्य था।

"कुत्ते! आज तू न होता तो रमेश और मेरे वीच में कोई रोक नहीं थी। लेकिन तूने मुझे वरवाद कर दिया।"

रमेश को लगा उसके पांवों के नीचे धरती नहीं थी। वह शून्य में ही रहा था और अव भी शून्य में ही था।

"तुम्हारी किस्मत! मैं तो चला। तुम भी कहीं अस्पताल में चली जाओ। वच्चे को वहीं छोड़ आना। आजकल वहुत-सी शरीफ औरतें यही करती हैं।" कहनेवाला हंस दिया और शायद वाहर की ओर चलने लगा। तभी ममता का कठोर स्वर सुनाई दिया, जिसको सुनकर भीतर की पग-ध्वनि एकदम रुक गई। रमेश ने कान खोलकर सुना, "खवरदार! कहां जाता है? वच्चा तो छोड़ दूंगी, पर जव तूने मुझे कहीं का न छोड़ा तो मैं भी तुझे नहीं छोड़ूंगी।"

रमेश ने पर्दा उठाकर देखा। ममता सामने के व्यक्ति की ओर पिस्तौल

ताने खड़ी थी । उसने घोड़ा दवा दिया । सामने वाला आदमी एक वार 'आह' करके धड़ाम से गिरा और फिर सन्नाटा छा गया । ममता के नेत्रों से चिनगारियां-सी निकल रही थीं । वह क्रोध के कारण थर-थर कांप रही थी । रमेश ने उसका वह विकराल रूप कभी नहीं देखा था । पिस्तौल का वह कर्कश स्वर घर-भर में गूंज उठा था । वगल के कमरे में विस्तर पर पड़ी मालती चौंक उठी । पिस्तौल चली है ! तो क्या यहां खून हुआ है ? उसने क्षीण स्वर से पुकारा, "मालकिन !"

किन्तु स्वर कमरे के वाहर नहीं निकल सका; क्योंकि द्वार वन्द था । मालती छटपटाने लगी । उसने अत्यन्त श्रम से उठने का यत्न किया किन्तु वह सफल नहीं हो सकी । अन्त में वह नीचे खिसकी । उसके मुख से दर्द की कराह निकली । पड़ी रही, फिर खिसकने लगी ।

"अगर गोली वाकी हो तो एक मेरे ऊपर चलाकर मेरा भी पाप नष्ट कर दो," कहता हुआ रमेश कमरे में घुसा । ऐसा लगता था जैसे वह ताल में डूब गया था, अभी-अभी पानी में से खींचकर वाहर निकाला गया है ।

वह हंसा । उसके हास्य में क्या नहीं था ? अपमान, विक्षोभ या डूब-कर लय हो जाने की पराजय ।

"तो तुम मां होनेवाली हो ? मेरे समुद्र के लिए जहाज ने इन्तजार भी नहीं किया ! तभी चम्पा कहती थी कि मैं गलत राह पर चल रहा हूं । तुम मुझे इस हालत में भी चक्कर में रखना चाहती थीं ।"

वह बढ़ा । उसके नेत्र दृढ़ थे । पलकों ने गिरना छोड़ दिया था ।

ममता कांप उठी । उसे जैसे इतना भयानक आघात लगा था कि उसका मुंह बिलकुल सफेद हो गया । पिस्तौल गिर गई ।

"बोलती क्यों नहीं ? मेरी होनेवाली बीवी कितनी खतरनाक औरत है यह मुझे जानना ही चाहिए ।" रमेश ने और पास आकर कठोर स्वर से कहा । उसके नेत्र ममता को निर्दयता से घूर रहे थे, "मैं एक गरीब आदमी था । तेरे लिए, सिर्फ मैंने धन और यश कमाए, लेकिन बदकारिन औरत ! तूने मुझसे झूठ कहा, मुझे धोखा दिया ।" उसका स्वर कुछ उठा ।

ममता को पसीना आया । सिर से पांव तक [illegible] गई । आंखों के भय ने उंगली डालकर जैसे पलकों को चौड़ा दिया । नसों पर बूंदें छलक आईं ।

मालती खिसकती आ रही थी। घावों में से खून बहने लगा था, क्योंकि पट्टी भीग गई थी। वह हांफ रही थी।

"उम्र मेरे पांवों के नीचे से खिसकती रही, मैं चलता रहा। दुनिया जानती है कि मैं एक करोड़पति हूं, पर वह दौलत! वह एक अंधी दौड़ थी···यह मैं आज जान सका हूं।" रमेश ने पागल की तरह चिल्लाकर कहा। वह ममता के बहुत पास आ गया और हाथ बढ़ाकर उसने ममता का गला पकड़ लिया। ममता डरी हुई खड़ी रही। जैसे वह अचेत हो गई थी। रमेश कहे जा रहा है, पर वह सुन नहीं पा रही है। जो कुछ वह कह रहा है, उसे ममता का उपचेतन सुन रहा है।

"मेरे प्रेम का यही बदला दिया है तूने! पत्थर! मैं तुझे प्यार करता था।" रमेश के स्वर में कम्पन था। मादक प्रेम की याद तो मरघट की ज्वाला में भी थिरकती हुई कांपने लगती है। स्वर उठा, "तूने मुझे बरबाद कर दिया। तूने मुझे कहीं का न रखा। तेरे लिए मैंने अपने-आपको मिटा दिया, अपनी इन्सानियत को कुचल दिया; गरीबों का लहू चूसता रहा, अपने दिल को मैंने पत्थर बना दिया।" यह कहते हुए उसने अपना नीचे का होंठ काट लिया, जैसे जो वह करता है, उस सबको जानता भी है। "लेकिन तू! तू मेरा इतना भी इन्तज़ार न कर सकी! जी में तो आ रहा है कि तेरा खून कर दूं···" रमेश के हाथ अब कांपने लगे।

"तो फिर रुक क्यों गए?" किसी ने धीमे से कहा। उस स्वर में कितना विश्वास और कितना अधिकार था कि रमेश जैसे चैतन्य हो गया। झिल्ली-सी फट गई। स्वर फिर सुनाई दिया, "मार डालो न?" एक मन्द हास्य और फिर थकान के दो लम्बे श्वास, फिर जैसे आश्वासन, "इस दुनिया में मर्द यही तो करते हैं। मनोहर ममता की दौलत चुराते वक्त मालती को मारता है, और रमेश मालती की दौलत ले जाकर ममता का खून करना चाहता है···"

रमेश ने देखा। हाथ गिर गए। "मालती!"

"क्यों, घबरा गए? और कुछ कहो न? प्रेम!" मालती धरती पर पड़ी हुई कहती रही धीरे-धीरे, "तुम जानते हो प्रेम करना!" उसके मुख को देख-देखकर रमेश पसीने से ऊपर से नीचे तक तरबतर हो गया,

"ममता समझती थी बैरिस्टर पापी है, तुम समझते हो ममता पापिन है, सच बताओ रमेश···!"

रमेश कांप उठा। उसको आज बिलकुल विश्वास नहीं हो रहा था कि वह यहां आकर फंस भी सकता है। "मालती···तुम···तुम···" उसने लड़खड़ाते स्वर में कहा, फिर जैसे ग्लानि ने उसका कण्ठ अवरुद्ध कर दिया। इससे आगे कुछ कहना चाहकर भी वह कह नहीं सका।

"हां, हां, मैं वही वेश्या हूं रमेश! इस दुनिया में वेश्या को कोई सहारा देनेवाला नहीं है। यह सारी दुनिया एक-दूसरे को लूटने में," मालती ने हांफते और कराहते हुए धीरे-धीरे कहा। उसकी शक्ति पल-पल में क्षीण हो रही थी। निस्संदेह उसके घावों में भयानक पीड़ा थी, तभी वह होंठ काटती थी, पर आंखों में उसके एक अदम्य विश्वास था जैसे आज मनुष्य को मत्यु के बाद का रहस्य भी ज्ञात हो गया था। वह उसी दृढ़ता से कहती चली गई। अपराजित, उच्छ्वसित, "लेकिन मैं हारी नहीं हूं···।" वह फिर थककर सांस लेने लगी, जैसे अब बोलना उसके लिए कठिन होता जा रहा है। शक्ति जवाब देती जा रही है, पर उसने फिर कहा, "मैंने सब कुछ देखा है, पर उधर लौटकर नहीं गई।" फिर उसके होंठों पर एक प्रबुद्ध मुस्कराहट आई। वह कुछ देर फिर रुकी।

"मैं जानती थी तुम इसी शहर में हो, मैं तुमसे मिलने आ सकती थी, पर आई नहीं। मैं जानती थी, तुम मुझसे डरोगे···मैं तुम्हें डराना नहीं चाहती थी···तुमने वेश्या देखी हैं···पर वेश्या का हृदय नहीं देखा···जब वह प्यार करती है तो दुनिया की कोई शक्ति उसे झुका नहीं सकती।" मालती ने कठिनाई से बात पूरी की।

"मालती···मालती···" रमेश पागल-सा पुकार उठा। वह क्या कहे? क्या वह कुछ कहने योग्य है?

ममता पागल-सी देख रही थी···क्या यह नौकरानी नहीं? क्या यह एक वेश्या है? और फिर इतना संयम? ममता की चेतना लौट आई। अपना पाप उसे गुरुतर दिखाई दिया।

मालती ने रमेश के पांव पर सिर रख दिया। वह धीरे-धीरे खिसककर उसके पास आ गई थी। धरती पर रक्त की बूंदें पट्टी भेदकर टपक

रही थीं। मालती ने लंबी सांस लेकर कहा, "मैं समझती थी यह सारा गीत अधूरा बनकर बीत जाएगा···लेकिन ऐसा नहीं हुआ···तुम आ गए···" उस समय उसके शिथिल नयनों में एक नई चमक भर गई जिसमें एक नया विस्तार था। मानवीय श्रद्धा और उसकी शक्ति संसार की कितनी पवित्र शक्ति है, उसे आज रमेश ने जीवन के एक क्षण में देखा, जैसे घने अन्धकार में बिजली चमक गई हो···

"मालती···मालती···" वह पुकार उठा। कितनी द्रावक वेदना थी उस कण्ठ-स्वर में। कितना पश्चात्ताप था। घुमड़न, घुमड़न की छटपटाहट और फिर विवशता की कचोट··

"आज मेरी सारी इच्छाएं पूरी हो गईं··भगवान···आज मेरे पिया··" मालती ने कहा और फिर उसका घिरता मौन उसके नेत्रों में एकत्र हो गया, और चुप होकर भी शत-शत गीर्वाण चेतना से बोलने लगा, वह सब कुछ जो संसार का बड़े से बड़ा कवि भी नहीं गा सका, जैसे पेड़ों पर भटकती कोयल की पुकार सुनकर मेघ का नीलम नेत्र अपने रस से स्वयं आर्द्र हो गया हो। गंधवती वासन्ती की जर्जर तृप्ति-सी वह दृष्टि अपनी सीमाओं में अपने स्नेह की लघु परिधियों को पार कर गई।

"मालती !" रमेश फुसफुसा उठा।

और मालती का शव उसके पांव पर लोटा रहा। वह शव ही था, किन्तु आंखों में कितना विभोर आनन्द था ! कितनी शान्ति थी ! एक पवित्र जीवन की इति हुई थी। साधना में जले हुए दीपक की पृष्ठभूमि पर नई भोर का तार झनझना उठा था। देवता पर चढ़े हुए पवित्र पुष्प ने अपनी स्वाभाविक गंध का विसर्जन करके अंतराल को व्यापक सम्मोहन से मूर्च्छित करके आत्मलय कर दिया था। रमेश अवाक्-सा देखता रहा। उसने दोनों हाथों से सिर पकड़ लिया। अपने जघन्य पाप की याद भी उसका सिर तोड़ने लगी, जैसे चट्टानों के भीतर जो हीरा था, उसे उसकी चेतना निकालने के लिए, बार-बार उस पर कठोर प्रहार कर रही थी। वह बैठकर उसे घूरता रहा, घूरता रहा।

ममता ने मालती को देखा। अपना सारा जीवन उसे कांटों के तारों की तरह घेरने लगा। यह वेश्या थी। इसने सब तरह के कष्ट झेलकर भी

कहीं अपना सिर नहीं झुकाया। मानवता की शक्ति ने उसे कभी विकृत भी नहीं होने दिया, जैसे उसने दुःख भोगा था, सुखों का निर्माण करने के लिए। वह शव के पास बैठ गई और उसने आर्त कण्ठ से कहा, "मैं पापिन हूं मालती, तू नहीं..."

रमेश हठात् जाग उठा। वह क्यों बैठा है यहां? सब स्वप्नों का जंजाल था। रमेश आज तक भटक रहा था। जो कुछ था वह पाप था।

रमेश तेजी से गाड़ी में बैठ गया। उसने गाड़ी चला दी। उसका हृदय कह रहा था, 'रमेश! तेरा वैभव एक विश्वासघात के आधार पर खड़ा है...'

× × ×

"तू मेरे पास रही, तूने मुझे पाप के रास्ते पर जाते देखकर रोका क्यों नहीं?" ममता ने सूनी आंखों से देखकर कहा। उसकी आंखों में आंसू नहीं था। जैसे आंसू उसमें बाकी नहीं थे। मुख श्वेत हो गया था, जैसे मुर्दे का मुंह था। मालती की मृत्यु उसकी अन्तिम विजय बन गई है। वह अब भी जीवन की प्रेरणा के समान धीरे-धीरे मुस्करा रही है, पर ममता की आंखों में एक गाम्भीर्य है, जैसे समुद्र कांपना छोड़कर बिल्लौर की तरह चुप हो गया है। 'मैं जाऊंगी। उन्हीं से जाकर अपने पापों की माफी मांगूंगी।' ममता ने फुसफुसाया। वही है इस पाप का प्रारम्भ। उसी की धधकती ज्वाला में इतने लोग सुलगे हैं और दहन के भयानक ताप को सहते रहे हैं। उन्हीं में एक यह है मालती। शान्त। मर गई है, पर मृत्यु को सिर झुकाकर हंसती हुई। ममता के नेत्र फट गये। आनन्द का उद्वेग हृदय की भीतियों को थर्राने लगा। वह बाहर भागी। गाड़ी निकाली और तेजी से रमेश के घर की ओर भाग चली। इस समय उसका हृदय अत्यन्त व्याकुल हो रहा था।

उधर रमेश आतुर-सा गाड़ी से उतरा।

और शोभा ने देखा रमेश की आंखों में उन्माद छा रहा था। अपमान की स्याही उसके नेत्रों के नीचे खड्डे बनकर गहरी हो गई थी। वह बिलकुल उन मेघों के समान गम्भीर दिखाई दे रहा था जिनमें टकराहट

शुरू हो गई थी, और धरती के समान शोभा ने विजली गिरने का-सा आभास पाया।

रमेश ने सजे हुए कमरे में प्रवेश किया, उसका सिर घूमने लगा। वैभव ! एक-एक वस्तु पर दृष्टि गई।

एक-एक वस्तु उस पर हंसने लगी। वह उन सबका दास था। एक का नहीं, सबका। इन्हीं में तो वह मनुष्य-जीवन की इति समझ बैठा था, कि सारी मर्यादाओं के मापदण्ड यही हैं ? तो क्या रमेश ने वास्तव में,अपनी आत्मा को शैतान के हाथ इन्हीं के लिए नहीं बेच दिया था ?

'कौन जीता ? तुम ?'—रमेश ने सोचा।

वह कितना सरल था। क्या वह ममता से प्रेम करता था ? ममता ! अपने समस्त वैभवमय रूप-शृंगार में खड़ी ममता। रमेश को लगा, लौट चलूं···कहां···ममता···गर्भवती···मूर्ख ! न तूने कभी प्रेम किया, न तू कभी ईमानदार रहा। तू किसी का भी न हुआ। तेरे सामने समुद्र लहराता रहा और तू कुत्ते की तरह चाटता रहा, एक बार भी मुंह भर-कर नहीं पी सका। तेरी हवस रोशनी करने वाला दीपक नहीं वन सकी, उसने तेरे अरमानों के महल को ही जला दिया।

और दृष्टि पड़ी मेज़ पर।

रमेश, चुप रह जा। जो मेज़ पर है वही संसार का सब कुछ है। जैसे सब रहते हैं, वैसे ही तू भी रह। पर तभी प्रतिहिंसा ने सिंहनी की भांति अपना पंजा धरती पर पटका···ममता की चमक को देखकर भूलनेवाले अन्धे ! तूने क्या नहीं किया ? तूने क्या नहीं किया ?

क्या किया ? व्यापार !!!

चुप रहो ! रमेश की अन्तरात्मा ने पुकारा। जघन्य प्राणी अपने पतन को सभ्य समाज के आडम्बर में छिपाने का प्रयत्न कर रहा है। गरीब के बेटे, क्या तेरा लहू बिलकुल पानी हो चुका है···इतने बड़े झूठ को सहज स्वीकार करने को आत्मा की मृत्यु चाहिए, अपनी मृत्यु चाहिए। कायर ! आज भी तू अपने पापों से डरता है···तूने हज़ारों-लाखों मजदूरों का खून चूसा···खून···रमेश ने नोटों की गड्डियां निकालकर मेज़ पर रख दीं। वह उन्हें देखता रहा, जैसे वह एक भयानक दानव से लड़ रहा था। उन्हें

देखकर उसके होंठ खिल गये। उसे लगा, उसके सामने अपार वैभव था। अपार शक्ति थी, तभी उसके होंठ मुड़ गए। वह वैभव मालती के शव का आकार धारण करके व्यंग्य से मुस्कराने लगा।

शोभा ने आश्चर्य से सुना, रमेश चिल्ला उठा था, "मालती !"

वह समझ नहीं पाई कि मालती से रमेश का इतना स्नेह कब था ! वह पास आकर पीछे खड़ी हो गई। वह रमेश की विकृतावस्था देखकर डर गई थी। उसे सब कुछ भयास्पद दिखाई दे रहा था।

"मालती, मुझे माफ कर ! शोभा ! मुझे माफ कर ! मेरी सारी जिन्दगी एक झूठ थी। नहीं, नहीं···मैं नहीं सह सकता···दौलत मुझे कभी नहीं हरा सकती···" रमेश फिर चिल्लाया।

आज जैसे उसके भीतर घुटन हो रही थी। कभी-कभी वह विक्षिप्त की भांति पुकार उठता था। और फिर अपने विचारों की शर-शैया पर पड़ा छटपटाने लगता था। झूठ ! फिर झूठ ! तेरे अरमानों की लाश तेरी मेज़ पर सड़ने लगी है। रमेश के मन ने कहा। मेज़ पर देखा।

नोट निर्जीव पड़े थे, पर फिर भी उनमें से अनेक हाथ-पांव निकले और उन्होंने रमेश का हृदय पकड़कर निचोड़ना प्रारम्भ किया···

नहीं, नहीं, मैं इससे नहीं हारूंगा, नहीं हारूंगा···रमेश फिर चिल्लाया। उसके हाथ में दियासलाई की डिब्बी दिखाई दी। उसने कांपते हाथ से डिब्बी को खोला। शोभा ने देखा और वह भय से थर्रा उठी। कितना विक्षिप्त हो गया है। यह मनुष्य की अपनी ही कमाई को आग लगानेवाला है ? "मालिक, ठहरिए···।" शोभा ने उसे पकड़कर पुकारा।

रमेश ने उसे धक्का दिया। वह गिर गई। उसने अपना घूंघट गिरते समय और खींच लिया। वह बैठ गई।

"औरत ! तू अभी तक रह ही गई ? यह दौलत अभी तक तेरी आंखों को चौंधिया रही है···" रमेश ने घृणा से फूत्कार किया। उसने ऐसे देखा जैसे उसके सामने कोई जघन्य प्राणी था।

"ठहरिए।" वह उठी। उसने इस अपमान को चुपचाप पी लिया।

"दूर हो जा ! तू कौन होती है ?" रमेश ने उसे धक्का देकर दूर हटा दिया। वह फिर गिरी। दियासलाई जली, कागज़ जलने लगे। रमेश ने उस

आग पर एक रेशमी वस्त्र जलाकर फेंका। हल्की लपट ने बिस्तर पर पड़े कपड़ों को पकड़ लिया और फिर वह करवटें बदलती लपट जब जीभ लप-लपाने लगी, रमेश को लगा उसका मन तप-तपकर निखर रहा है।

रमेश ठठाकर हंसा। उसके मन की जलन बुझ रही थी। इसी ने तो उसका सर्वनाश किया था। इसी के कारण तो वह मनुष्यत्व से गिर गया था !

पागल-सी ममता ने उसी समय प्रवेश किया। कमरे में धुआं घुटने लगा था, जिसके कारण आंखों और नाक से पानी बहने लगा था। ममता की आंखें उस धुएं से बन्द हो गईं। वह आहत-सी दोनों हाथ पसारकर रमेश की ओर बढ़ी। रमेश पीछे हट गया। ममता मेज़ से टकराई।

"ममता ! ले देख ! तेरा इन्तज़ार जल रहा है, मेरी दौलत ! मेरा घर !" रमेश ने चिल्लाकर कहा। लपट अलमारियों में तलाशी ले रही थी। रमेश का कठोर अट्टहास बार-बार बीभत्स बनकर गूंजने लगा। उस समय शोभा के हाथ-पांव डर के कारण कांपने लगे।

"यह सब तेरे लिए लाया था···" रमेश ने ममता की ओर देखकर कहा, "देखती है ममता···? इसे दिल से चिपटा ले, तो·· यह सब तेरा है"···वह फिर हंसा। उस समय आग छत के रोशनदानों से बाहर निकलने लगी थी। वह कहता रहा—"आज से मैं भी यहां नहीं रहूंगा··चला जाऊंगा···कहीं दूर···जहां कोई ममता नहीं होगी···जहां तू नहीं होगी।"

रमेश का गला रुंध गया क्योंकि धुआं घुट गया था। वह खांस उठा। बाहर भोला के चिल्लाने का स्वर आया, "आग ! आग !"

ममता को चक्कर-सा आया। वह अन्तिम बार जैसे रमेश के पास पहुंचने को और आगे बढ़ी, पर लपट ने कमर लचकाकर झोंका लिया और फिर उसने ममता की साड़ी के एक छोर को पकड़ लिया। ममता मूर्च्छित होकर गिर पड़ी। शोभा चीख उठी। उसने देखा, ममता जल रही थी। वह भयानक स्वर से चिल्लाई। शोभा ने देखा, कमरा अंधकारमय हो गया था। धुआं आंखें भी नहीं खोलने देता था। रमेश ठठाकर हंसता रहा··· वह शायद अपनी चेतना को खो चुका था। शोभा खड़ी हो गई। उसने

रमेश के पास पहुंचने को हाथ बढ़ाया। वह हांफने लगी थी।

रमेश दोनों हाथों से बाल नोचकर हंसता जा रहा था, हंसता जा रहा था···कभी-कभी उसके हास्य के बीच-बीच में उसके शब्द सुनाई पड़ जाते ···सब···कुछ मिट गया···मिट जाने दो···

शोभा थरथरा गई।

"मैं जीत गया हूं···हारा नहीं हूं···" रमेश के स्वर में अब एक करुणा प्रतिध्वनित हो रही थी। धुआं इतना छा गया था कि उसका स्वर स्वयं आग की हरहर में डूबने लगा था। वह अब भी फटी हुई आंखों से देखता हुआ खड़ा था। बाहर लोग इकट्ठे हो गए थे। कोलाहल हो रहा था। आग लग गई। कैसे लग गई। कुछ लोगों ने घुसकर देखा, भीतर दूर रमेश ठठाकर हंस रहा था।

आग बुझाने का इंजन आ गया और पानी डाला जाने लगा। लोग बाहर बातें कर रहे थे, शायद पागल हो गया है···कोलाहल बढ़ता जा रहा था। एकाएक रमेश चैतन्य हुआ। उसने जुर्म किया था। अब रमेश बाहर भागा। शोभा दौड़कर उसके सामने आ गई। रमेश ने देखा। देखता रहा। शोभा मुख पर घूंघट डाले द्वार पर खड़ी थी। निर्भीक!

"कहां जाते हो मालिक!" वह चिल्लाई।

"हट जा बीच से ··अब मैं जीना नहीं चाहता," रमेश ने उससे भी अधिक चिल्लाकर कहा, "मेरा रास्ता छोड़ दे। मैंने सब कुछ अपने हाथों से समेटकर अपने हाथों से उसमें आग लगाई है। तू क्या मुझे रोक लेगी?" रमेश ने उसे हटाते हुए फिर कहा, "हट जा मेरे सामने से···"

किन्तु शोभा खड़ी रही। "चम्पा!" रमेश गरजा।

"नहीं!" एक दृढ़ शब्द। और शोभा खड़ी रही।

"हट जा! आज मुझे कोई नहीं रोक सकता। तू मेरी होती कौन है ···हट जा! बीच से।" रमेश ने आतुर कण्ठ से कहा।

एकाएक शोभा ने घूंघट पलट दिया। रमेश ने देखा और देखा। शोभा! शोभा!!

तो क्या यह चंपा नहीं थी? शोभा थी! और मेरे लिए इतना अपमान और कष्ट सहकर, मेरे लिए तिल-तिल करके अपने-आपको मिटाए दे

रही थी। उसे विश्वास नहीं हुआ। उसने फिर शोभा को ध्यान से देखा। वह सचमुच शोभा ही थी। कहा, "शोभा !"

शोभा ने कुछ नहीं कहा। उसकी आंखों में आंसू आ गए। दुःख के नहीं, सुख के। रमेश को लगा, वह उन्नति की जिन सीढ़ियों पर एक-एक करके चढ़ा था, वह हठात् उनसे लुढ़ककर नीचे आ गिरा है। मां की आत्मा की अतृप्ति शोभा बनकर उसके चारों ओर घूम रही थी। उसको भटकते देखकर अपने बलिदान से उसको ठीक करना चाहती थी।

शोभा ! शोभा ! ! शोभा ! ! ! वही भोली-भाली, पवित्र लड़की !

"बोलो शोभा !" रमेश ने फिर कहा, "तुम···"

"तुम नहीं, तू कहो, तू।" शोभा ने रोते हुए कहा।

रमेश हिचका। उसे पसीना आ गया। वह जैसे एकदम खिन्न हो गया था। अटककर कहा, "तू ! शोभा ! तू···"

उसे चक्कर-सा आया पर शोभा ने उसे संभाल लिया। रमेश ने उसे हृदय से लगा लिया। उस क्षण की एक परिधि में सारे जीवन की बिखरी हुई शक्तियां अपने-आप आकर इकट्ठी हो गईं।

"चलो कहीं दूर···" शोभा ने कांपते कण्ठ से कहा।

"चलो शोभा···" रमेश ने उसी तरह कहा। दोनों मुड़कर खड़े हुए।

पर सामने ही दारोगा खड़ा था। दोनों ने आश्चर्य से देखा।

रमेश ने अकड़कर कहा, "क्या है ?"

सिपाही पास आ गए।

"तुमने आग लगाकर एक लड़की को मार डाला है।" दारोगा ने कहा। सिपाही ने रमेश को पकड़ लिया।

शोभा का अपना-पराया अब एक हो गया था !

●●

रांगेय राघव

17 जनवरी 1923 को जन्म, आगरा में। मूल नाम टी० एन० वी० आचार्य (तिरुमल्लै नम्बाकम वीर राघव आचार्य) कुल से दाक्षिणात्य लेकिन ढाई शतकों से पूर्वज वैर (भरतपुर) के निवासी। शिक्षा आगरा में। सेंट जॉन्स कॉलिज से 1944 में स्नातकोत्तर और 1949 में आगरा विश्वविद्यालय से गुरु गोरखनाथ पर पी एच०डी०। हिन्दी, अंग्रेजी, ब्रज और संस्कृत पर असाधारण अधिकार।

किशोरावस्था से लेखनारंभ। 19-20 वर्ष की अवस्था में अकालग्रस्त बंगाल की यात्रा। लौटकर हिन्दी के प्रारंभिक पर अविस्मरणीय रिपोर्ताजों—'तूफानों के बीच'—का सृजन। 23-24 वर्ष की आयु में ही हिन्दी जगत में अभूतपूर्व चर्चा के विषय।